पिंजड़े की उड़ान

यशपाल

पिंजरे की उड़ान

पिंजरे की उड़ान

लेखक

यशपाल

प्रकाशक

विप्लव कार्यालय, लखनऊ

१९३९

मूल्य—एक रुपया

दो शब्द

हमारी कल्पना का आधार जीवन की ठोस वास्तविकताएँ ही होती हैं और इसीलिए कथा कहानी के रूप में कल्पना का महत्व है। हमारी कल्पना या तो अतीत सुख-दुख की अनुभूति के चित्र बनाकर उससे सुख उठाना चाहती है या आदर्श की ओर संकेत कर समाज के लिए नया नक़शा तैयार करने का यत्न करती है।

जब छः वर्ष तक मैं पिंजरे में बन्द था, उस समय वास्तविक कार्य-शीलता के लिए कोई अवसर न था। इसलिए मेरी कल्पना भूत और भविष्य की भूलभुलैया में उड़ाने भरा करती थी।

इनमें से कुछ कहानियाँ मासिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। कुछ पारखियों ने इन्हें पुस्तक रूप में छपवा देने के लिए अनुरोध किया इसलिए इन्हें छपवा दिया है।

भाव, भाषा और कला की दृष्टि से मेरा प्रयास कैसा रहा है, यह इन कहानियों को पढ़ने वाले निश्चय करेंगे। मैंने इनमें केवल अपने प्रति ईमानदारी निभाई है।

'विप्लव'
लखनऊ

यशपाल

गल्प-सूची

'मक्रील'

गरमी का मौसिम था। 'मक्रील' की सुहावनी पहाड़ी आबोहवा में छुट्टी बिताने के लिए आई हुई सम्पूर्ण भद्र जनता खिचकर मोटरों के अड्डे पर—जहाँ पंजाब से आनेवाली सड़क की गाड़ियाँ ठहरती हैं—एकत्र हो रही थी। सूर्य पश्चिम की, देवदारों से छाई हुई, पहाड़ी की चोटियों के पीछे सरक गया था। चोटियों के ऊपर के पेड़ों के बीच से सूर्य का अवशिष्ट प्रकाश देवदारों से ढकी आग की दीवार के समान जान पड़ता था।

ऊपर आकाश में मोर-पूँछ के आकार में दूर-दूर तक सिन्दूर फैल रहा था। उस गहरे अर्गवनी रंग के पर्दे पर ऊँची काली चोटियां निश्चल, शान्त और गम्भीर खड़ी थीं। संध्या-आरम्भ के झीने अँधेरे में पहाड़ियों के पार्श्व के बनों से पक्षियों का कलरव तुमुल परिमाण में उठ रहा था। वायु में चीड़ की तीखी गन्ध भर रही थी। सभी ओर उत्साह, उमंग और चहल-पहल थी। भद्र महिलाओं और पुरुषों के समूह राष्ट्र के मुकुट को उज्ज्वल करनेवाले कवि के सम्मान के लिए उतावले हो रहे थे।

योरुप और अमेरिका ने जिसकी प्रतिभा का लोहा मान लिया, जो देश के इतने अभिमान की सम्पत्ति है, वही कवि मक्रील में कुछ दिन स्वास्थ्य-सुधारने के लिए आ रहा है। मक्रील में जमी राष्ट्राभिमानी जनता पलकों के पाँवड़े डालकर उसकी अगवानी के लिए आतुर हो रही थी।

पहाड़ियों की छाती पर खिची हुई धूसर लकीर-सी सड़क पर, दूर

धूल का एक बादल-सा दिखाई दिया। जनता की उत्सुक नजरें और उँग-लियाँ उस ओर उठ गईं। क्षण-भर में धूल के बादल को फाड़ती हुई काले रंग की एक गतिमान वस्तु दिखाई दी। वह एक मोटर थी। आनन्द की हिलोर से जनता का समूह लहरा उठा। देखते-ही-देखते मोटर आ पहुँची।

जनता की उन्मत्तता के कारण मोटर को दस कदम पीछे ही रुक जाना पड़ा—'देश के सिरताज की जय!' 'सरस्वती के वरद पुत्र की जय!' 'राष्ट्र के मुकुट-मणि की जय!' के नारों से पहाड़ियाँ गूंज उठीं।

मोटर फूलों से भर गई। बड़ी चहल-पहल के बाद जनता से घिरा हुआ, गजरों के बोझ से गर्दन झुकाये, शनैः शनैः क़दम रखता हुआ मकील का अतिथि मोटर के अड्डे से चला।

उत्साह से बावली जनता विजयनाद करती हुई आगे-पीछे चली। जिन्होंने कवि का चेहरा देख पाया, वे भाग्यशाली विरले ही थे। 'धवल गिरि' होटल में दूसरी मंजिल पर कवि को टिकाने की व्यवस्था की गई थी। वहाँ उसे पहुँचाकर, बहुत देर तक उसके आराम में व्याघात कर, जनता अपने स्थान को लौट आई।

क्वार की त्रयोदशी का चन्द्रमा पार्वत्य-प्रदेश के निर्मल आकाश में ऊँचा उठकर अपनी शीतल आभा से आकाश और पृथ्वी को स्तम्भित किए था। उस दूध की बौछार में 'धवल गिरि' की हिम-धवल दोमंजिली इमारत चाँदी की दीवार-सी चमक रही थी। होटल के आँगन की फुलवारी में भी खूब चाँदनी थी; परन्तु उत्तर-पूर्व के भाग में, इमारत के बाजू की छाया पड़ने से, अंधेरा था। बिजली के प्रकाश से चमकती हुई खिड़कियों के शीशों और पर्दों के पीछे से आनेवाली मर्मरध्वनि तथा नौकरों के चलने-फिरने की आवाज़ के अतिरिक्त सब शान्त था।

उस समय इस अँधेरे बाजू के नीचे के कमरे में रहनेवाली एक युवती

फुलबारी के अन्धकारमय भाग में एक सरो के पेड़ के समीप खड़ी दूसरी मंजिल में पुष्प-तोरणों से सजी उन उज्ज्वल खिड़कियों की ओर दृष्टि लगाए थी, जिनमें सम्मानित कवि को ठहराया गया था।

वह युवती भी उस आवेगमय स्वागत में सम्मलित थी। पुलकित हो, उसने भी 'कवि' पर फूल फेंके थे, जयनाद भी किया था। परन्तु उस भीड़-घमासान में कवि के समीप पहुँचकर एक आँख देख लेने का अवसर उसे न मिला था। इसी साध को मन में लिये वह इस खिड़की की ओर टकटकी लगाये खड़ी थी, जिसके काँचपर कवि के शरीर की छाया उसे जब-तब दिखाई पड़ जाती थी।

स्फूर्तिप्रद भोजन के पश्चात् कवि ने बरामदे में आकर काले पहाड़ों के ऊपर चन्द्रमा के मोहक प्रकाश को देखा। सामने संकरी धुँधली घाटी में बिजली की लपक-की तरह फैली हुई मक्रील की धारा की ओर उसकी नजर गई। नदी के प्रवाह की गम्भीर घरघराहट को सुनकर वह सिहर उठा। कितने ही क्षण मुँह उठाये वह मुग्ध-भाव से खड़ा रहा। मक्रील नदी के उद्दाम प्रवाह को उस उज्ज्वल चाँदनी में देखने की इच्छा से कवि की आत्मा व्याकुल हो उठी। आवेश और उन्मेष का वह पुतला सौन्दर्य के इस आह्वान की उपेक्षा न कर सका।

सरो वृक्ष के समीप खड़ी युवती पुलकित भाव से देश कीर्ति के उस उज्ज्वल नक्षत्र को प्यासी आँखों से देख रही थी। चाँद के धुँधले प्रकाश में इतनी दूर से उसने जो भी देख पाया, उसी से संतोष की साँस लेकर उसने श्रद्धा से सिर नवा दिया। इसे ही अपना सौभाग्य समझ वह वहाँ खड़ी ही थी कि उसने लम्बा ओवरकोट पहने, छड़ी हाथ में लिये, दाईं ओर के जीने से कवि को नीचे आते देखा। पल-भर में कवि फुलबारी में आ पहुँचा।

फुलवारी में पहुँचने पर कवि को स्मरण हुआ कि ख्यातनामा मक्रील का मार्ग तो वह जानता ही नहीं। इस अज्ञान की अनुभूति से कवि ने दाएँ-बाएँ सहायता की आशा से देखा। समीप ही खड़ी उस युवती को देख, भद्रता के लिए टोपी को छूते हुए उसने पूछा—'आप भी इसी होटल में ठहरी हैं ?'

सम्मान से सिर झुकाकर युवती ने उत्तर दिया—'जी हाँ।'

कवि ने झिझकते हुए कहा—'मक्रील नदी समीप ही किस ओर है, यह शायद आप जानती होंगी ?'

उत्साह से क़दम बढ़ाते हुए युवती बोली—'जी हाँ, यही सौ क़दम पर पुल है।'—और मार्ग दिखाने के लिए वह प्रस्तुत हो गई।

युवती के खुले मुख पर चन्द्रमा का प्रकाश पड़ रहा था। पतली भँवों के नीचे बड़ी-बड़ी आँखों में मक्रील की उज्ज्वलता झलक रही थी।

कवि ने संकोच से कहा—'न,न, आपको व्यर्थ कष्ट होगा।'

युवती ने गौरव से कहा—'कुछ भी नहीं—यही तो है, सामने !'

उजली चाँदनी रात में·········संगमरमर की सुघड़, सुन्दर, सजीव मूर्ति-सी युवती············साहसमयी, विश्वासमयी मार्ग दिखाने चली—सुन्दरता के याजक कवि को। कवि की कविता-वीणा के सूक्ष्म तार ध्वनित हो उठे।

—सुन्दरता स्वयं अपना परिचय देने चली है—सृष्टि–सौन्दर्य–सरोवर की एक लहर उसे दूसरी लहर से मिलाने लेजा रही है—उसने सोचा।

सौ क़दम पर मक्रील का पुल था। दो पहाड़ियों के तंग दर्रे में से उद्दाम वेग और घनघोर शब्द से बहते हुए जल के ऊपर तारों के रस्सों में हल्का-सा झूलता पुल लटका हुआ था। वे दोनों पुल के ऊपर जा खड़े हुए। नीचे तीव्र वेग से लाखों-करोड़ों पिघले हुए चाँद बहते चले जा

रहे थे, पार्श्व की चट्टानों से टकराकर वे फेनिल हो उठते थे। फेनराशि से दृष्टि न हटाकर कवि नें कहा—'सौन्दर्य उन्मत्त हो उठा है।' युवती को जान पड़ा, मानो प्रकृति मुखरित हो उठी है।

कुछ क्षण पश्चात् कवि ने कहा—'आवेग में ही सौन्दर्य का चरम विकास है। आवेग निकल जाने पर केवल कीचड़ रह जाता है।'

युवती तन्मयता से उन शब्दों को पी रही थी। कवि ने कहा—'अपने जन्म-स्थान पर मक्रील न इतनी वेगवती होगी, न इतनी उद्दाम। शिशु की लटपट चाल से वह चलती होगी,और समुद्र में पहुँच वह प्रौढ़ता की शिथिल गम्भीरता धारण कर लेगी।

'अरी मक्रील! तेरा समय यही है। फूल न खिलने से पहले इतना सुन्दर होता है, और न तब जब कि उसकी पँखुड़ियाँ लटक जाती हैं। उसका भी असली समय वही है, जब वह स्फुटोन्मुख होता है। मधुमाखी उसी समय उसपर निछावर होने के लिए मतवाली हो उठती है।'

एक दीर्घ निःश्वास छोड़, आँखें झुका, कवि चुप हो गया।

मिनट-पर-मिनट गुजरने लगे। सर्द पहाड़ी हवा के झोंके से कवि के वृद्ध शरीर को समय का ध्यान आया। उसने देखा—मक्रील की फेनिल श्वेतता युवती की सुघड़ता पर विराज रही है। एक क्षण के लिए कवि 'घोर शब्दमयी युवती' को भूल 'मूक युवती' का सौंदर्य निहारने लगा। हवा के दूसरे झोंके से सिहरकर उसने कहा—'समय अधिक होगया है, चलना चाहिए।'

लौटते समय मार्ग में कवि नें कहा—'आज त्रयोदशी के दिन यह शोभा है। कल और भी अधिक प्रकाश होगा; यदि असुविधा न हो तो क्या कल भी मार्ग दिखाने आओगी?' और स्वयं ही संकोच के चाबुक की चोट खाकर वह हँस पड़ा।

युवती ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया—'अवश्य।'

सर्द हवा से शरीर ठिठुर गया था। कमरे की सुखद उष्णता से उसकी जान में जान आई। भारी कपड़े उतारने के लिए वह परिधान की मेज (Dressing table) के सामने गया। सिर से टोपी उतार कर उसने ज्यों ही नौकर के हाथ में दी, बिजली की तेज रोशनी में उसने सामने आईने में देखा, मानो उसके सिर के बालों पर राज ने चूने से भरी कूची का एक पोत दे दिया हो, और धूप में सुखाये फल के समान झुर्रियों से भरा चेहरा !

नौकर को हाथ के संकेत से चले जाने को कह वह दोनों हाथों से मुँह ढक कुर्सी पर गिर-सा पड़ा। मुँदी हुई पलकों में से उसे दिखाई दिया—चाँदनी में संगमरमर की उज्ज्वल मूर्ति का सुघड़ चेहरा जिसपर यौवन की पूर्णता छा रही थी। कवि की आत्मा चीख उठी—'यौवन !' 'यौवन !'

× × ×

ग्लानि की राख से बुझती हुई चिनगारियों को उमंग के पंखे से सजगकर कवि चर्तुदशी की चाँदनी में मझील का नृत्य देखने के लिए तत्पर हुआ। 'घोषमयी' मझील को कवि के यौवन से कुछ मतलब न था, और 'मूक मझील' ने पूजा के धूप-दीप के धूम्रावरण में कवि के नख-शिख को देखा ही न था। इसलिए वह दिन के समय संसार की दृष्टि से बचकर अपने कमरे में ही पड़ा रहा। चाँदनी खूब गहरी हो जाने पर मझील के पुल पर जाने के लिए वह शंकित हृदय से फुलवारी में आया।

युवती उसकी प्रतीक्षा में खड़ी थी।

कवि ने धड़कते हुए हृदय से उसकी ओर देखा—आज शाल के बदले वह शुतरी रंग का ओवरकोट पहने थी; परन्तु क्या उस गौर सुघड़ नख-शिख को पहचानने में भूल हो सकती थी ?

कवि ने गद्गद स्वर से कहा—'ओहो ! आपने अपनी बात रख ली; परन्तु इस सर्दी में, कुसमय में, शायद उसके न रखने मे ही अधिक बुद्धिमानी होती । व्यर्थ कष्ट क्यों कीजियेगा ? आप विश्राम कीजिए ।'

युवती ने सिर झुकाकर उत्तर दिया—'मेरा अहो भाग्य है, आपका सत्संग कर रही हूँ ।'

कंटकित स्वर से कवि ने कहा—'सो कुछ नहीं, सो कुछ नहीं ।'

पुल के समीप पहुँच कर कवि बोला—'आपकी बड़ी कृपा है कि आप मेरा साथ दे रही हैं ।······संसार में साथी बड़ी चीज़ है'—मक्तील की ओर संकेत कर—'यह देखिये, इसका कोई साथी नहीं । इसीलिये हाहाकार कर साथी की खोज में दौड़ती चली जा रही है ।'

स्वयं अपने कथन की तीव्रता के अनुभव मे संकुचित हो हँसने का असफल प्रयत्न कर अप्रतिभ हो वह प्रवाह की ओर दृष्टि गड़ाये खड़ा रहा । आँखें बिना ऊपर उठाये ही उसने धीरे-धीरे कहा—

'पृथ्वी की परिक्रमा कर आया हूँ—कल्पना में सुख की सृष्टिकर जब मैं गाता हूँ, संसार पुलकित हो उठता है । काल्पनिक वेदना के मेरे आर्तनाद को सुनकर संसार रोने लगता है; परन्तु मेरे वैयक्तिक सुख-दुःख से संसार का कोई सम्बन्ध नहीं । मैं अकेला हूँ, मेरे सुख को बँटानेवाला कहीं कोई नहीं, इसलिए वह विकास न पाकर तीव्र दाह बन जाता है । मेरे दुःख का दुर्दम वेग असह्य होकर जब उछल पड़ता है, तब भी संसार उसे विनोद का ही साधन समझ बैठता है । मैं पिंजरे में बन्द बुलबुल हूँ । मेरा चहकना संसार सुनना चाहता है । मैं सुख से पुलकित हो गाता हूँ, या दुःख से रोता हूँ इसकी चिन्ता किसी को नहीं ।

'काश ! जीवन में मेरे सुख:दुख का कोई एक अवलम्ब होता ! मेरा कोई साथी होता ! मैं अपने सुख-दुःख का एक भाग उसे दे, उसकी अनु-

भूति का भाग ग्रहण कर सकता ! मैं अपने इस निस्सार यश को दूर फेंक संसार का जीव बन जाता।'

कवि चुप हो गया। मिनट-पर-मिनट बीतने लगे। ठंडी हवा से जब कवि का बूढ़ा शरीर सिहरने लगा, तब उसने दीर्घ निःश्वास लेकर कहा—'अच्छा, चलें।'

द्रुतवेग से चली जाती हुई जलराशि की ओर दृष्टि किए युवती ने कम्पित स्वर में कहा—'मुझे अपना साथी बना लीजिए।'

मझील के गम्भीर गर्जन में विडम्बना की हँसी का स्वर मिलाते हुए कवि बोला—'तुम्हें ?' और चुप रह गया।

शरीर काँप उठने के कारण पुल के रेलिंग का आश्रय ले युवती ने लज्जा-विजड़ित स्वर में कहा—'मैं यद्यपि तुच्छ हूँ·········'

'न-न-न यह बात नहीं,'—कवि ने सहसा रुक कर कहा—'उलटी बात······हाँ, अब चलें।'

फुलवारी में पहुँचकर कवि ने कहा—'कल—' परन्तु बात पूरी कहे बिना ही वह चला गया।

× × ×

अपने कमरे में पहुँच कर सामने के आईने की ओर दृष्टि न करने का जितना ही वह यत्न करने लगा, उतना ही स्पष्ट अपने मुख का प्रतिबिम्ब उसके सम्मुख आ उपस्थित होनें लगा। बड़ी बेचैनी से कवि का दिन बीता। उसनें सुबह से ही एक तौलिया आईनें के ऊपर डाल दिया, और दिन-भर वह कहीं बाहर न निकला।

दिन-भर मझील पर और न जानें क्या निश्चय कर संध्या समय कवि पुनः तैयार हो फुलवारी में गया।

शुतरी रंग के कोट में संगमरमर की वह सुघड़ मूर्ति सामने खड़ी

थी। कवि के हृदय की तमाम उलझन क्षण-भर में लोप हो गई। कविने हँसकर कहा—'इस सर्दी में···? देश-काल-पात्र देखकर ही वचन का भी पालन किया जाता है।'

पूर्णिमा के प्रकाश में कविने देखा—उसकी बात के उत्तर में युवती के मुखपर सन्तोष और आत्म-विश्वास की मुस्कराहट फिर गई।

पुलपर पहुँचकर कवि हँसते हुए बोला—'तो साथ देनें की बातसच-मुच ठीक थी ?'

युवती नें उत्तर दिया—'उसमें परिहास की तो कोई बात ही नहीं थी।'

कवि ने युवती की ओर देख सहासकर पूछा—'तो जरूर साथ दोगी?'

'हाँ।'—युवती नें हामी भरी, बिना सिर उठाये ही।

'सब अवस्था में; सदा ?'

युवती ने फिर सिर झुकाकर कहा—'हाँ।'

कवि मानों अविश्वास से हँस पड़ा। उसनें कहा—'तो आओ, यहीं साथ दो—मक्रील के गर्भ में !'

'हाँ, यही सही।'—युवती ने निर्भीक भाव से नेत्र उठाकर कहा।

हँसी रोक कर कवि ने कहा—'अच्छा, तो तैयार हो जाओ—एक-दो-तीन !' हँसकर कवि अपना हाथ युवती के कन्धे पर रखना चाहता था। उसने देखा पुल के रेलिंग के ऊपर से युवती का शरीर नीचे मक्रील के उद्दाम प्रवाह की ओर चला गया—

भय से उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। हाथ फैलाकर उसे पकड़ने के विफल प्रयत्न में बड़ी कठिनता से वह अपने आपको सम्हाल सका।

मक्रील के घोर गर्जन में एक दफे सुनाई दिया—'छप,' और फिर कुछ नहीं।

कवि को ऐसा जान पड़ा—मानो मकील की लहरें निरन्तर उसे 'आओ ! आओ !' कहकर बुला रही हैं। वह अचेत के समान, ज्ञान-शून्य पुल का रेलिंग पकड़े खड़ा रहा। जब पीठ पीछे से चलकर चन्द्रमा का प्रकाश उसके मुँह पर पड़ने लगा, तब उन्मत्त की भाँति लड़खड़ाता हुआ वह अपने कमरे में पहुँचा।

कितनी देर तक वह निश्चल आईने के सामने खड़ा रहा। फ़िर हाथ की लकड़ी को दोनों हाथों से थाम उसने पड़ापड़ आईने पर कितनी ही चोटें लगाईं, और तब साँस चढ़ जाने के कारण वह हाँफता हुआ आईने के सामने की ही कुर्सी पर धम से गिर पड़ा।

× × ×

प्रातःकाल हजामत के लिए गरम पानी लेकर जब नौकर आया—तब उसने देखा, कवि आईने के सामने कुर्सी पर निश्चल बैठा है; परन्तु आईना टुकड़े-टुकड़े हो गया है और उसके बीच का भाग ग़ायब है। चौखट में फँसे आईने के लम्बे-लम्बे भाले के से टुकड़े मानो दाँत निकाल कर कवि के निर्जीव शरीर को डरा रहे हैं।

कवि का मुख काग़ज़ की भाँति पीला और शरीर काठ की भाँति जड़ था। उसकी आँखें अब भी खुली थीं; पर उनमें से जीवन नहीं, मृत्यु झाँक रही थी।

बाद में मालूम हुआ कि रात के पिछले पहर में कवि के कमरे से अनेक बार—'आता हूँ, आता हूँ' की पुकार सुनाई दी थी !

नीरस रसिक

अमीरा कदल पुल के नीचे से नीलगूं दूधिया जेहल्म तीसरे पहर के सूर्य की किरणों में झिलमिल बही जा रही थी। बहते जल का कल-कल, मर-मर शब्द और शिकारों[1] के छोटे-छोटे चप्पुओं की छपाछप पुल पर से जानेवालों के कानों तक पहुँच रही थी। नदी के दोनों किनारों पर छोटे बड़े बजरे लगातार खड़े थे। बीच धार को चीर कर दांयें से बांयें और बांयें से दांयें किनारे जानेवाले चटकीले रंगीले पर्दों से आवृत्त शिकारे नदी की धार पर ऐसे मालूम पड़ते थे मानो धूप में सूख रही नीली रेश्मी साड़ी पर तितलियाँ कढ़ी हों।

एक युवक बगल में कागज़ का एक पुलिन्दा दबाये पुल की लकड़ी की पटिया (फुटपाथ) पर खड़ा पोस्ट आफिस की ओर मुख किये इस दृष्य को देख रहा था। उसे सुनाई पड़ा—'माँजी ! यह देखो प्रद्युम्नजी खड़े हैं।'

घूमकर युवक ने देखा—एक वृद्धा की बगल में खड़ी एक तरूणी अभिवादन के अभिप्राय से उसकी ओर देखकर मुस्करा रही है।

'नमस्ते'—कहकर उसने पूछा—'आप भी यहीं हैं ?'

तरूणी ने कुछ समीप आकर कहा—'हम तो यहाँ एक सप्ताह से हैं। पिताजी आकर हमें छोड़ गये हैं। आप कब आये ?'

---

१. कश्मीर में सवारी के लिये उपयोग में आनेवाली छोटी नाव को शिकारा कहते हैं।

प्रद्युम्न ने कहा—'मार्च के शुरू में ही कश्मीर आ गया था। पर इधर आज मैं आठ दिन बाद आया हूँ।'

तरुणी ने मुस्कराकर पूछा—'क्या इस दृश्य का चित्र बनाने का विचार है ?'

प्रद्युम्न ने फिर जेहलम की ओर देखते हुए उत्तर दिया—'यह मैं बना चुका हूँ। ठीक यही नहीं—हाँ जेहलम के 'प्रभातकालीन' दृश्य का एक तैल चित्र मैंने तैयार किया है। उस समय मैं यहीं ठहरा हुआ था। पंद्रह दिन में वहाँ (संकेत कर) लाइब्रेरी के समीप था। आप लोग कहाँ ठहरे हैं ?'

तरुणी नें उत्तर दिया—'हम लोग 'चिनार नाले' में हैं; आप अब कहाँ हैं ?'

प्रद्युम्न नें कहा—'अब मैं डल में हूँ।'

तरुणी की माता ने कहा,—'डल में ? वहाँ तो सब गोरे-ही-गोरे रहते हैं; क्यों सविता ?'

सविता ने हँसकर कहा—'यह भी तो साहिब हैं।'

सविता की हँसी का उत्तर हँसी से देते हुए प्रद्युमन ने कहा—'नहीं मैं साहिब तो मैं नहीं हूँ। मैं साहिब लोगों से कुछ हटकर बाईं ओर हूँ। मार्तण्ड[1] का एक पेंटिंग तैयार कर रहा हूँ। उसके बाद उस जगह को छोड़ दूँगा।

सविता ने कहा—'आप अपने चित्र मुझे दिखाइयेगा ?'

प्रद्युम्न ने उत्तर दिया—'जब कहिये।'

माँ की ओर देख सविता ने कहा—'लेकिन आपके हाउस बोट को कैसे—ढूढूँगी ?'

---

१. पर्वत शिखिर पर सूर्य का मन्दिर।

दायें किनारे की ओर संकेत कर प्रद्युम्न ने कहा—'मेरा शिकारा वह खड़ा है। चलिये यहीं से डलगेट होकर चलिये। वहाँ से घूमकर मैं आपको 'चिनार नाले' पहुँचा दूँगा। क्यों माताजी ! आप इधर कहाँ जारहीं हैं?'

सविता ने बताया कि वह माँ के लिये एक दवाई कैमिस्ट के यहाँ लेने आई थी। असली अभिप्राय घूमने जाने का ही था।

× × × ×

प्रद्युम्न का बजरा[1] छोटासा था। पहिले छः फुट खुली जगह, उसके बाद ड्राइंग रूम। इस ड्राइंग रूम को ही प्रद्युम्न ने अपनी चित्रशाला बना लिया था। माँ और सविता को बिठा, हाँजी (मांझी) को चाय लाने के लिये कहा, वह बजरे की दीवार के सहारे उलट कर रखे कई एक चित्रों में से एक को उठाकर उन्हें दिखाने लगा।

यह 'जेहलम का प्रभातकालीन दृष्य' था। जो दृश्य वे लोग अभी देखकर आ रहे थे, उससे इसमें केवल इतना अन्तर था कि रूपहली चटकीली धूप की जगह प्रभात की पहिली सुनहली सिंदूरी सी किरणें अधिक गहरे नीले जल पर छा रही थीं और ऊपर हल्के नीले आकाश में पक्षियों की पक्तियाँ।

वृद्धा ने अपने श्रान्त नेत्रों को खोल-खोल चित्र को देखा परन्तु उसके उपयुक्त तारीफ़ के शब्द उसे न सूझ सके। सविता ने माँ के बदले भी अंग्रेजी में बहुत कुछ कहा।

दूसरा चित्र था 'गौरव की वस्तु'—मैले कुचैले फटे पुराने वस्त्र, झुर्रियों से भरा चेहरा, एक वृद्ध फूल से सुन्दर एक बालक को गोद में लिये था। उसकी आँखें अभिमान से चमक रही थीं। यह तस्वीर माँ को बहुत पसन्द आई।

---

१. मकान के ढँग की नाव।

हाजी चाय ले आया। सविता ने हँसकर कहा—'वाह ! माँजी को मुसलमान के हाथ की चाय पिलाइयेगा ?'

प्रद्युम्न अपनी भूल पर लज्जित हो गया। उसने पूछा—'आजकल आप क्या कर रही हैं ? कालिज तो आप छोड़ चुकी हैं ?'

माँ ने स्नेह का उलाहना देते हुए कहा—'कहाँ; एक एम० ए० कर चुकी है अब फिर कोई दूसरा एम० ए० कर रही है।'

अपनी इस प्रशंसा की बात को उड़ा देने के लिये सविता ने कुछ विवशता दिखाते हुए कहा—'इसमें क्या हर्ज है, आखिर करें क्या ?'

माँ द्रवित स्वर में बोलीं—'पहिले ही इतनी कमजोर है इसपर और पढ़ाई का जोर !'

सविता ने हँसकर जवाब दिया—'अच्छा ! मैं प्रद्युम्नजी से तस्वीर बनाना सीखूंगी। उससे तो कमजोरी नहीं होगी ? क्यों आप सिखायेंगे ?'

प्रद्युम्न ने उत्तर दिया, 'क्यों नहीं—आप अवश्य सीखिये।'

२

जब सविता ने एंट्रेंस पास किया था, उसी वर्ष माँ ने उसके विवाह की बात उठाई थी, परन्तु पिता ने इस ओर कान न दिया। एफ़. ए. पास कर लेने के बाद वह बात उसने और अधिक जोर से उठाई परन्तु सविता के पिता को योग्य वर तालाश करने की कुछ जल्दी न हुई। पिता चाहते थे लड़की को मानसिक विकास का पूर्ण अवसर मिले।

बी. ए. पास लड़की के लिए योग्य वर मिलना आसान काम नहीं। और उसकी राय के बिना कुछ कर देना भी ठीक नहीं जँचा। इतने में सविता ने एम. ए. पास कर लिया। एम. ए. पास करने तक सविता ने इतना अधिक साहित्य पढ़ डाला कि साधारण पंजाबी हिन्दू लड़की के समान केवल विवाह ही उसके जीवन का एकमात्र लक्ष नहीं रह गया।

स्थूल जगत के अंतराल में जो एक सूक्ष्म जीवन है, जिसकी लीला मस्तिष्क के अपरोक्ष निस्सीम क्षेत्र में रची जाती है, उसमें उसका प्रवेश हो चुका था। विवाह कर वह अपने जीवन को निम्नकोटि के क्षेत्र में परिमित नहीं कर देना चाहती थी। वह जीवन के उस अदृष्य परन्तु अनुभूति मय स्रोत, काव्य, को नहीं छोड़ देना चाहती थी जिसमें अतीन्द्रिय भाव से सभी कामनाओं की तुष्टि हो सकती है। उस इच्छा के देश को छोड़ पर कटाकर अपने आपको दूसरे के हाथ सौंप देने में क्या सुख था?

विवाह तो एक दिन हो ही जायगा। कौमार्य एक दफे जाने के बाद लौट नहीं सकता—तो फिर कौमार्य के इस अधिकार को जितने दिन रक्खा जा सके अच्छा है। उसके मीठे वैराग्य को जितने दिन भोगा जा सके अच्छा है।

प्रेम की आवश्यकता का अनुभव उसे न हुआ हो सो नहीं। जीवन बीणा का यह तार उसके हृदय में झनकार कर चुका था। इस राग को उसने सुनने की चेष्टा की थी। निर्लिप्त भाव से गाने की भी उमंग मन में उठी थी—परन्तु इस राग का आधार बहुत ही सूक्ष्म था—पृथ्वी से बहुत ऊँचा था। उसे भौतिकता का रूप दे वह मिट्टी में नहीं मिला देना चाहती थी।

वायु की लहरों पर बहती हुई बादलों की नौका पर चढ़ उसने हृदय के आकाश में व्याप्त, अस्पृष्ट प्रेमी को पुकारा—कोई उत्तर न पा—उसने आसुओं का जल प्लावन बहा दिया—आहों जारी की आंधी चला दी—उसी में अन्तर ध्यान हो उसने समझा—जीवन की सूक्ष्म वास्तविकता उसके हाथ आगई।

उसकी कविताओं की प्रशंसा भी खूब हुई थी। प्रणयार्थियों की कमी न होने से, उसे उनकी परवाह न थी। जरूरत नहीं मालूम पड़ती थी।

उसने विडम्बना से मुस्कराकर कहा—'मेरी कविता का लक्ष्य कला की अराधना है, और आत्म तुष्टि ।

× × ×

कागज पर पेंसिल से अपनी कल्पना की सृष्टि रचनेवाले, समाज से विरक्त उदासीन युवक की तटस्थ गम्भीरता ने उसके मन में आदर का भाव उत्पन्न कर दिया । युवक की सौन्दर्य रचना की क्षमता देख सविता के मन में भी उसका अनुकरण करने की इच्छा उत्पन्न हुई । जीवन के लिये यह कितना व्यापक और आकर्षक क्षेत्र है । संसार से कुछ आशा न कर, 'स्वान्तःसुखाय' सौन्दर्य की रचना यदि वह भी कर सके ! संसार उसकी रचना को मुग्ध दृष्टि से देखे! यह कितने संतोष का विषय होगा !

सविता नित्य तीसरे पहर कागज पेंसिल लेकर शिकारे पर सवार हो प्रद्युम्न के बजरे पर ड्राइंग सीखने जाती थी । एक छोटीसी मेज पर कागज जमा स्टूल पर बैठ वह बड़े यत्न से प्रद्युम्न के निर्देशानुसार रेखा अभ्यास करती और अपने बजरे पर आकर भी वह उसका अभ्यास करती । प्रद्युम्न के मुँह से एक Good—'प्रशंसा का एक शब्द' सुनने के लिये वह अपनी पूर्ण शक्ति व्यय कर देती ।

प्रद्युम्न मार्तण्ड के मन्दिर का जो चित्र तैयार कर रहा था, वह अस्तोन्मुख सूर्य की किरणों में ही फबता था । इसलिए इस समय प्रद्युम्न खिड़की के सामने बैठ चित्र पर कूची चलाने में मग्न रहता और सविता श्रद्धा से उसकी ओर देखती रहती । कुछ पूछने की जरूरत होने पर भी न बोलती । यहाँ तक कि संध्या हो जानेपर, बिना कुछ कहे ही घर लौट जाती ।

उस दिन तीसरे पहर बादल हो जाने से मार्तण्ड का चित्र बनाने के लिये सूर्य का प्रकाश अनुकूल न था, इसलिये प्रद्युम्न को फुर्सत थी । वह

सविता की बगल में झुककर उसे रेखाओं के विषय में समझा रहा था। उसके श्वास से सविता के माथे पर छिटके हुए केश थिरक-थिरक जाते थे। उसके गरम श्वास का स्पर्श सविता की कनपटी और गर्दन पर अनुभव हो रहा था। इस स्पर्श से सविता के हाथ में एक शिथिलता सी आ जाती। पेंसिल उसकी उंगलियों में बार बार हिल जाती। पेंसिल के हिलने से रेखाओं में अंतर आ जाता, और इसके लिये प्रद्युम्न निर्मम भाव से उसे डांट देता। प्रद्युम्न की यह अभद्रता सविता को सरलता और निष्कपटता मालूम पड़ती थी, उसमें बल्कि यथेष्ट माधुर्यथा।

प्रद्युम्न ने खीझकर कहा—'तुम्हारा यह हाथ क्यों हिल जाता है ?' सविता की उंगलियों को जोर से थामकर उसने बताया—'यों रखिये।'

सविता परदे के जगत की कुमारी नही थी। उसने अनेक अवसरों पर स्त्रियों और पुरुषों से हाथ मिलाया था और उसमे किसी प्रकार की झिजक उसे अनुभव नही हुई थी। परन्तु प्रद्युम्न के हाथ के छू जाने से उसे न जाने कैसा अनुभव हुआ ? उसके हाथ से पेंसिल गिर पड़ी। प्रद्युम्न नें पूछा—'क्या थक गई ?'

प्रद्युम्न ने हांजी को पुकार कर चाय लाने के लिये कहा और समीप कुर्सी पर बैठ वह उत्साह से सविता को रेखाओं का महत्व समझाने लगा। उसने कहा—'सौन्दर्य रंग में भी है और आकृति में भी। आकृति का सौन्दर्य रंग के सौन्दर्य से अधिक गम्भीर हैं।'

सामने शीशे के जार में रखी हुई तीन कमल की कलियों की ओर संकेत कर उसने कहा—'देखिये, इन फूलों का रंग बहुत सुन्दर है। लेकिन यदि इनकी प्रति मूर्ति हम पत्थर में अंकित कर दें तो वह भी कम सुन्दर न होगी। सौन्दर्य का प्रधान कारण इनकी निर्दोष गोलाइयाँ और इनके नाल की लोच हैं। साहित्य में न जान कितनी चीजों की

उपमा कमल से दी जाती है जिनमे कमल का रंग नहीं होता। उनमें केवल इनकी वर्तुल रेखाओं की कोमलता ही देखकर हम मुग्ध हो जाते है। जिस समय हम चित्र में मुख या अवयव की भंगिमा से कोई भाव व्यक्त करना चाहते हैं, उस समय रेखा में बाल भर अन्तर ला देने से ही सब कुछ बदल जाता है। रेखा ही सब कुछ है······। कागज का यह टुकड़ा है, इसपर कुछ नहीं। यह पेंसिल लेकर यों दो वक्र रेखायें खेंच दीजिये, आँख हो गई! कागज देखने लगा! ज़रा परिवर्तन कर देने से यह आँख चकित, या क्रोधित, या मुग्ध हो सकती है। और इसमें इस ढंग से जरा बढ़ा देने से ही यह मछली बन जायगी। इस रेखा को यों न खींचकर, यों खींच देते तो वृक्ष बन जाता। यह भी कहा जा सकता है कि इस कागज़ में सृष्टि के सभी रूप हैं और उपयुक्त रेखा से वह प्रकट हो जाते हैं। सृष्टि का रहस्य रेखा या आकृति में ही है। यदि भिन्न-भिन्न रेखायें न हों तो सब एक सात, सब शून्य ही हो जाय।"

हांजी चाय रख गया। सविता प्याले में चाय डालने लगी। सविता के मुख की ओर बिना देखे प्रद्युम्न ने कहा—'तुम्हारी उंगलियाँ बहुत सुन्दर हैं। तुम्हारा चायदानी पकड़ने का ढंग बहुत कलापूर्ण है खासतौर पर यह एक उंगली से ढक्कन को दबाना बहुत अच्छा मालूम देता है।"

सविता को रोमांच हो आया। उसका हाथ हिल गया, चाय मेजपोश पर गिर गई। सविता अपनी इस बेमौक़े की शिथिलता से झेंप गई। प्रद्युम्न ने निरपेक्ष भाव से कहा—'कुछ परवाह नहीं, कोई हर्ज नहीं।'

उसके स्वर में सविता के शैथिल्य की अनुभूति का कुछ भी आभास न था।'

प्रद्युम्न निरंतर सविता की उंगलियों की ओर देखता रहा। जब चाय के दोनों प्याले बहुत शनैः शनैः चाय डालने पर भी भर ही गये,

सविता ने चाय दानी रख दी । प्रद्युम्न ने सविता के मुख की ओर आंख उठाकर कहा—'एक दिन मैं तुम्हारी उंगलियों का (Sketch) आलेख्य बनाऊँगा ।

दूसरे दिन सविता जब अपने यहाँ आलेख्य का अभ्यास करने बैठी, अपनी उंगलियों को देखकर उसका मन कल्पना लोक में जा माधुर्य की सृष्टि करने लगा । ध्यान बिखर जाने के कारण वह कुछ भी न कर सकी, पर इस असफलता के कारण उसका मन दुखी न हुआ ।

तीसरे पहर मौसिम बहुत अच्छा था । आकाश ऐसा नीला, मानों डल झील का पानी ऊपर चढ़कर फैल गया हो । मार्तण्ड के मन्दिर के ऊपर एक बादल का टुकड़ा झालरदार सुनहरी लटक रहा था । सूर्य की तिर्छी किरणों में मन्दिर और कलश पर छाया और प्रकाश का भेद खूब स्पष्ट हो रहा था ।

प्रद्युम्न का सामान तैयार था । वह स्टूल पर बैठना ही चाहता था, इसी समय सविता आ पहुँची । सविता ने कहा—'आज तो आकाश आपके पेन्टिंग के खूब अनुकूल है ।'

प्रद्युम्न ने एक कमल के पत्ते पर एक कली रखकर कहा—'आज इसका आलेख्य कीजिये । पहिले खूब ध्यान से देखकर एक-एक रेखा को हृदयंगम कर लीजिये ।'

सविता के मुख पर अपनी तीव्र दृष्टि गड़ाकर उसने समझाया—'कागज़ पर उतारने से पहिले आकृति को हृदयंगम करना ज़रूरी है ।'

सविता को अनुभव हुआ मानों उसकी मुखाकृति को प्रद्युम्न की दृष्टि आत्मसात किये ले रही है । अपनी त्वचा पर उसे प्रद्युम्न की दृष्टि का स्पर्श अनुभव हो रहा था ।

मार्तण्ड की छाया ठीक होते ही प्रद्युम्न खिड़की के सामने बैठ अपने

पेंटिंग में रत हो गया। सविता यत्न करने पर भी अपना ध्यान कमल के पत्ते और कली पर न लगा सकी। उसके मस्तिष्क में रक्त के वेग के कारण उष्णता अनुभव हो रही थी। सामने देख वह सोचने लगी यदि कोई चित्रकार सौन्दर्य के इस स्रष्टा का चित्र अंकन कर सके तो निश्चय ही वह कला का एक अद्भुत नमूना होगा। ध्यान को एकाग्र कर वह काग़ज़ पर रेखा खींचने का यत्न करती परन्तु न ध्यान जमता न हाथ ही। प्रायः एक घण्टा व्यतीत हो गया। इस बीच में केवल एक बेर सिर फिराकर प्रद्युम्न ने पूछा—'कुछ बना ?'

सविता ने कहा—'बना रही हूँ'—परन्तु पेंसिल की अपेक्षा वह रबड़ ही अधिक चला रही थी।

सविता प्रद्युम्न को बिना टोके ही चली जा रही थी परन्तु प्रद्युम्न ने पुकार कर कहा—'चली जा रही हो ? लो आज यह समाप्त होगया। अब दो-चार रोज़ तुम्हें अधिक सहायता दे सकूँगा। ठहरो न तुम्हें छोड़ आऊँगा।'

वे दोनों शिकारे में साथ-साथ बैठे जा रहे थे। प्रद्युम्न के कहने से हांजी शिकारे को मजनू के पेड़ों के बीच से ले चला। दोनों ओर लहराते हुए मजनू के पेड़ों के बीच से उनका शिकरा जा रहा था। जल की सतह पर कमल इस तरह छा रहे थे कि पानी कहीं दिखाई न पड़ता था। कमल के फूल दबते चले जाते थे और शिकारा उनपर से फिसलता चला जा रहा था।

प्रद्युम्न ने अर्धउन्मीलित नेत्रों से सामने की ओर देखते हुए कहा—'मध्यकालीन यूरोप का एक चित्र है 'वीनस का सागरोद्भव' (Venus rising from the sea)। मेरे विचार में यदि इस पर्वत की छाया में कमल आच्छादित जल से मोहिनी का उद्भव पेंट किया जाय तो बहुत माकूल चित्र बने।'

सविता ने पूछा—'आप अब इसी चित्र को क्यों आरम्भ नहीं करते ?'

प्रद्युम्न कमलों के विस्तार पर से दृष्टि हटाये बिना ही बोला—'कल्पना के आधार पर ऐसा चित्र जब कभी भी बन सकता है। यहाँ आने का मेरा प्रयोजन कुछ प्रकृति और कुछ मनुष्य शरीर के चित्रों का बनाना है।'

सविता ने पूछा—'अब कौनसा चित्र शुरू कीजियेगा ?'

प्रद्युम्न ने उसी तरह ध्यान मग्न रहकर उत्तर दिया—'मैं एक युवति का निरावरण चित्र बनाना चाहता हूँ।'

सविता का चेहरा लाल हो गया और नेत्र झुक गये।

अपनी भूल का ध्यान आने पर प्रद्युम्न ने सविता की ओर देखकर कहा,—'मैं कला के दृष्टि से बात कर रहा हूँ। जब हम सृष्टि की अन्य सुन्दर वस्तुओं से आशंकित नहीं होते तो मनुष्य शरीर में ऐसी कौनसी बात है ? नारी एक व्यक्ति के लिये मातृत्व की अनुभूति उत्पन्न करती है, दूसरे के लिये वह अन्य दृष्टि से काम्य वस्तु हो सकती है। कलाकार के लिये वह लावण्य का पुंज मात्र है। यही बात पुरुष के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है।'

प्रद्युम्न के इस तटस्थ भाव से सविता का संकोच जाता रहा। बहुत देर तक वह इस बात को सोचती रही। समय-समय पर प्रदर्शनियों और पत्रिकाओं में देखी हुई अनेक निरावरण छवियाँ कल्पना में उसके सामने आकर नाचने लगीं। उनमें अब उसे में एक नया सामन्जस्य, एक नई कला दिखाई पड़ने लगी। स्नान करते समय, या आइने के संमुख जाते समय उसे एक अद्‌भुत विचार घेर लेता। आशंका होती, शायद वह आवश्यकता से अधिक कृष है, उसके केश यदि कुछ और लम्बे होते, यदि उनका रंग कुछ और चमकीला काला होता, वे घुँघराले होते।

किसी भी व्यक्ति को देखने पर उसकी दृष्टि बहुत गहरी जाती। वह उसे कला की दृष्टि से देखने का यत्न करती। शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों के अनुपात का, उनके एकांगिक सौन्दर्य का भी खयाल करती। जर्मनी के नग्न समाज के प्रति उसकी विशण्ण विरक्ति दूर हो गई।

प्रद्युम्न उसे निर्जीव पदार्थों, पशु-पक्षियों के चित्र बनाने को कहता परन्तु वह अपने यहाँ लौट कर मनुष्य शरीर के चित्र बनाने की चेष्टा करती। भिन्न-भिन्न अंगों को स्वस्थ और उनके उचित अनुपात में देखकर उसे बहुत संतोष होता।

× × ×

हाँजी की सहायता से प्रद्युम्न का काम बन गया। एक काश्मीरी सुन्दरी युवती प्रति दिन तीन घण्टे उसके सामने बैठने के लिये आती थी। दस बजे से एक बजे तक का समय, जिस समय बजरे में काफ़ी प्रकाश रहता था, प्रद्युम्न पेंटिंग में खर्च करता। संध्या समय बिलकुल फुर्सत रहने से प्रद्युम्न सविता को खूब सहायता दे सकता था परन्तु अब अधिकतर आलोचना या बातचीत ही होती। सविता के लिये चित्रां-कंन के अभ्यास की अपेक्षा प्रद्युम्न के यहाँ जाना ही मुख्य प्रयोजन हो गया।

सविता को न जाने क्यों उसके परोक्ष में आकर चित्र उतरवाने के लिये संमुख बैठनेवाली काश्मीरी युवती से ईर्षा होती थी। कई दफ़े उसकी इच्छा हुई कि प्रद्युम्न से उस अधुरे चित्र को दिखाने के लिये कहे। परन्तु नग्न चित्र देखने की इच्छा प्रकट करने के लिये उसकी जिह्वा जड़ हो जाती। उसका मन चाहता था, वह प्रद्युम्न के बजरे को घेरे रहे। किसी भी दूसरी स्त्री को उस ओर ताकने न दे। वह दो बजे आ जाती और प्रायः साँझ तक वहीं बनी रहती।

माँ ने लाड़ली बेटी को कभी किसी बात पर टोका नहीं था परन्तु लड़की का यों विलम्ब से आना उसे सुहाता न था। माँ ने कहा—'सविता जरा जल्दी आया कर तो कुछ घूमने फिरने का भी समय रहे। यहाँ आकर यदि स्वास्थ्य ठीक न हुआ तो लाभ ही क्या?'

सविता को कभी झूठ बोलने की आवश्यकता न पड़ी थी, न उसे उसका अभ्यास था। अब वह प्रायः माँ के पूछने पर काश्मीर आई हुई किसी सहेली के साथ घूम आने की बात बना देती। परन्तु समय सब प्रद्युम्न के ही यहाँ व्यतीत हो जाता।

उस रोज सविता जानबूझकर एक बजे से पहिले ही आ पहुँची। उस समय वह काश्मीरी नवयुवती सुन्दरी बजरे से लौट रही थी। उसका छरहरा शरीर, अस्खलित यौवन, सद्यप्रस्फुतित पुष्प के समान सुन्दर जान पड़ता था। उसे देख सविता ने वितृष्णा से मुख फेर लिया। मन में उसने कहा—इस में न जाने क्या रखा है?'

प्रद्युम्न यह सब देख रहा था। उसने पूछा—'क्यों क्या बात है?'

सविता ने उद्विग्न स्वर में कहा—'यही है न जिसका तुम चित्र खींच रहे हो।'

प्रद्युम्न ने उत्तर दिया—'हाँ! क्यों? उसमें क्या बुराई है?'

सविता ने क्रोध को दबाते हुए कहा—'तो इसमें अच्छाई ही क्या है?'

प्रद्युम्न—'क्यों, प्रकृति से सौन्दर्य का वरदान पाना क्या लज्जा का विषय है?'

सविता—'तो क्या इसका सौदा करे इन्सान?'

प्रद्युम्न ने आश्चर्य से पूछा—'सौदा? सौदा कैसा? सौन्दर्य जैसी सम्पदा को छिपाने का क्या कारण? और फिर सौदा कैसा? क्या कोई सौन्दर्य का मूल्य दे सकता है? मैंने इसे पचास रुपये दिये हैं परन्तु यौरुप

में वह इसी सिटिंग के लिये मामूली तौर पर चार पाँच सौ रुपया पा सकती थी। यदि उसकी अच्छी एक छवि बन सके, यदि इस नश्वर शरीर के सौन्दर्य की शाश्वत स्मृति रह सके तो वह कितनी आत्माओं का संतोष कर सकेगी ? अच्छा आओ इस पेंटिंग को देखो कैसा बना है ?'

सविता के मन की इच्छा पूर्ण हुई। परन्तु आज इस ओर ताकने को उसका मन न चाहता था। चित्र को देखकर वह अपलक रह गई। एक अपूर्व सुन्दरी युवती आदम कद आइने के सामने खड़ी स्वयम अपनी ही छवि देखकर चकित हो रही है। उसे मालूम हुआ—मानो उस काश्मीरी युवती के सन्मुख वह पद दलित हो गई। आँसू इकट्ठे होकर उसके गले में भर आये। ओंठ दबा उन्हें पी, विक्षिप्त भाव से वह एक कुरसी पर बैठ गई।

प्रद्युम्न ने पूछा—'आज ड्राइंग नहीं करोगी ?'

सविता से कुछ कहते न बना। यदि मुंह खोलती तो उसमें से क्रन्दन का चीत्कार निकल पड़ता। उसने सिर हिलाकर इनकार कर दिया।

प्रद्युम्न ने खीझे हुए स्वर में कहा—'उस युवती पर तुम्हारा क्रोध अकारण है।'

सविता ने गहरा सांस लेकर कहा—'सौन्दर्य की अराधना में पैसे का क्या सवाल ?'

प्रद्युम्न ने दूसरी कुरसी पर बैठते हुए उत्तर दिया—'ठीक है, उस स्त्री के लिये यह सौन्दर्य की आराधना नहीं थी।'

सविता ने विजय के स्वर में कहा—'यही तो बात है, उसने अपने सौन्दर्य का सौदा किया है।'

प्रद्युम्न ने एक सिगरेट जलाकर बहुत-सा धुंआ छोड़ते हुए शान्त स्वर में कहा—'यदि संगीतज्ञ अपने गले के माधुर्य से कुछ कमाले, या

चित्रकार अपनी उंगलियों की कला से कुछ अर्जन करे, या पहलवान अपनी शारिरिक शक्ति से इनाम पाने की चेष्टा करे तो उसमें कुछ भी बुरा नहीं, निन्दा का कोई कारण नहीं। लेकिन रूपवति यदि अपने रूप के प्रभाव से कुछ पाजाय तो वह महापाप है, क्यों ?'

इस अज्ञात युवती के प्रति प्रद्युम्न की सहानुभूति सविता को फूटी आंखों न सुहा रही थी। उसने बात समाप्त करने के लिये कहा—'यों तर्क करने से बात बहुत दूर तक पहुँच सकती है। सभी जगह एक ही नुसखा नहीं चल सकता। औचित्य की एक सीमा है।'

प्रद्युम्न अपने संगृहित चित्रों का एक एलबम उठा लाया। उसमें से 'रोरिक निकोलस' के अनेक चित्र सविता को दिखाकर उसने कहा—'मुझे रोरिक के आदर्श की ओर संकेत करने वाले चित्र बहुत पसन्द हैं। इनमें से विशेषकर 'पथदर्शक' और 'शान्ति पताका'। इसी प्रकार के दो-चार चित्र मैं भारतीय संगीत के रूपक लेकर बनाना चाहता हूँ; पर अभी इस विषय में अपनी कल्पना से मैं संतुष्ट नहीं हो सका।'

सविता ने कहा—'देर हो रही है चलूँ, मां नाराज़ होंगी।'

प्रद्युम्न ने एलबम बन्द करते हुए कहा—'ठहरो जाना, चाय पीकर जाना। तुम बहुत थकी हुई हो।'

सविता ने पूछा—'अभी तो आप उसके दो एक पेंटिंग और बनायेंगे।'

प्रद्युम्न ने सिर हिलाकर कहा—'न, मुझे एक और चित्र निरावण बनाना है परन्तु उसके लिये भाव पूर्ण और चेतन मस्तिष्क चेहरे की ज़रूरत है जिसे कह सकते हैं 'मस्तिष्क का सौन्दर्य' वह उस औरत में नहीं है।'

प्रद्युम्न उठकर बाहिर हाँजी को चाय बनाने का हुक्म देने गया। उस समय सविता ने एक गहरा सांस लिया। उसकी आँखों से रुके हुए आँसू ढुलक पड़े। अपनी निर्बलता प्रकट होने के भय से उठ समीप मेज पर

रखे हुए जग में से कमल के फूल निकाल उसने खिड़की में से बाहिर मुँह धो डाला। वह खूंटी पर से तौलिया ले मुंह पोंछ ही रही थी उसी समय प्रद्युम्न लौट आया उसने पूछा—'क्यों मुँह क्यों धो डाला ? क्या गरमी मालूम होती है, खिड़की खोलदूँ ?'

सविता ने भर्राई हुई आवाज़ में उत्तर दिया—'नही तो।'

प्रद्युम्न ने ध्यान से सविता की ओर देखकर कहा—'क्यों क्या कुछ जुकाम है आवाज़ भारी क्यों है ?'

सविता कुछ उत्तर न दे जग के शेष जल में कमल के फूलों को पैठाने लगी।

प्रद्युम्न ने कहा—'तुम्हारी यह उंगलियां इन कलियों पर बहुत भली मालूम होती हैं, इनका एक स्केच कैसा अच्छा बने' ?

फिर कुरसी पर बैठते हुए सविता ने कहा—'मुझे क्या मालूम'।

चाय समाप्त होने पर प्रद्युम्न ने घड़ी की ओर देखकर कहा—'तुम्हें देर तो नहीं हो रही, माँ नाराज़ न हों ?'

सविता ने उत्तर दिया—'अभी जाती हूँ।'

पन्द्रह मिनट और बीत गये। प्रद्युम्न ने कहा—'अंधेरा हो जायगा चलो तुम्हें छोड़ आऊँ।'

सविता ने कुर्सी पर बैठे ही बैठे धीमे स्वर में कहा,—'चलती हूँ'।

एक बात उसके हृदय से निकल कर उसकी जिह्वा पर आना चाहती थी परन्तु जिह्वा उसकी तीव्रता को न सहार सकती थी।

अंधेरा हो जाने पर ही वे लोग चिनार नाले पहुँच पाये।

× × × ×

अक्टूबर का महीना आ पहुँचा। सविता के लिये अब अधिक दिन श्रीनगर में ठहरना सम्भव नहीं था। माँ तो अगस्त से ही घबरा रही

थीं। प्रद्युम्न डल झील छोड़कर अपना बजरा जेहलम में ले आया था। दोनों के बजरों में दो फर्लांग से अधिक अंतर नहीं था। सविता और माँ के श्रीनगर से चलने में केवल दो ही दिन रह गये थे परन्तु प्रद्युम्न के जाने का अभी कोई सवाल ही नहीं था। उसने अपने चित्र पेरिस की प्रदर्शनी के लिये भेज दिये थे। अब वह हेमन्त ऋतु में हिम की श्वेत चादर ओढ़े काश्मीर के कुछ चित्र बनाना चाहता था।

श्रीनगर आते समय सविता बेफ़िक्री, आत्मतुष्टि, तटस्थता और अभिमान लिये रानी बनकर आई थी। आज उससे कोसों दूर, वह अपने ही सन्मुख बन्दी सी, पराजित सी, दलित सी हो रही थी। परन्तु हज़ार दुखों का दुख यह था कि विजेता अपनी विजय की ओर आंख उठाकर भी देखना न चाहता था। मानो वह विजय करने लायक कोई चीज़ ही नहीं थी। संसार में इस उपेक्षा से अधिक असाह्य और क्या होगा ? जो हो, अब उसे निर्णय करना ही था, या तो अब, या फिर कभी नहीं ?

उस दिन उसने सीधे ही प्रद्युम्न से पूछ लिया—'आखिर सौंदर्य का प्रयोजन सृष्टि में क्या है ? जो तुम उसे इतना महत्व देते हो ?

प्रद्युम्न ने ध्यान से शून्य की ओर देखकर कहा—'सौन्दर्य का प्रयोजन······मैं तो कहूँगा, सौन्दर्य सृस्टि का गुण है। सृष्टि की गति को सृजन-शक्ति को चालू रखना इस गुण का प्रयोजन है। सृष्टि का सौन्दर्य ही उसके जीवन की स्फूर्ति है। अपनी सौन्दर्य शक्ति के द्वारा ही सृष्टि अपनी गति को जारी रख पाती है। सृष्टि के चर अचर में सौन्दर्य अपने आपको चरितार्थ करता है। यही सृष्टि के में जीवन की गति का रहस्य है।

सविता ने बात को समाप्त न होने देने के लिए पूछा—'तो क्या सृष्टि के सभी प्राणी सुन्दर हैं ?—आकर्षक हैं ?'

प्रद्युम्न ने उत्तर दिया—'जरूर ! कविता या कला के प्रदर्शन के लिए हम चाहे एक आध व्यक्ति या जीवन को आधार चुन लें परन्तु सौन्दर्य स्त्री मात्र में, और पुरुष मात्र में व्यापक है, जैसे आकाश और ऊष्णता सभी पदार्थों में व्याप्त हैं।'

सविता ने एक और चोट की, उसने पूछा—'आपको तो आकर्षण शायद उस कश्मीरन के अतिरिक्त और कहीं दिखाई नहीं दिया ?'

प्रद्युम्न ने जरा हँसकर जवाब दिया—'सो बात नहीं, पर तुम्हारा क्रोध उसपर से हटा नहीं ! वह सुन्दर जरूर है, और बहुत सुन्दर है परन्तु उसका सौन्दर्य ऐन्द्रिय-आकर्षण को चेतन करने के ही योग्य है। मैंने उससे अधिक आकर्षक सौन्दर्य क्यों नहीं देखा ! जागरित मस्तिष्क को केवल आकृति और रंग का ही लावण्य आकर्षित नहीं करता। वह रूप के लावण्य के साथ चेतन मस्तिष्क की आभा भी चेहरे पर देखना चाहता है। तुम्हारे ही मुख पर जो करुण और सौम्य की आभा है वह किसी संस्कृत मस्तिष्क को छुए बिना नहीं रह सकती।'

सविता से रहा न गया, वह रो पड़ी।

प्रद्युम्न ने समझा कि सविता अपने प्रति व्यक्तिगत संकेत से नाराज़ होगई। उसने दुखित होकर कहा—'तुम किसी बात पर तटस्थ समीक्षक की दृष्टि से विचार क्यों नहीं कर पाती ? इसमें व्यक्तिगत बात तो कुछ भी नहीं थी।'

इस सवाल का असर सविता पर उलटा ही हुआ। उसके रोने का वेग बाँध तोड़ कर बह निकला।

बहुत देर तक ध्यान मग्न रहकर प्रद्युम्न ने कहा—'मुझे अफसोस है अपनी ग़लती पर। अब मैं किसी ऐसे प्रसंग पर बात न करूँगा। लेकिन यह तरीक़ा कलाविदों या कवियों का नहीं है।'

सविता निराशा की चोट से बिलखकर उठ खड़ी हुई, उसने कहा—'मैं जाती हूँ।'

प्रद्युम्न चलकर उसे छोड़ आने को प्रस्तुत हुआ। सविता ने कहा—'रहने दीजिये, क्या कष्ट कीजियेगा।'

प्रद्युम्न ने कुछ न समझ, व्यथित होकर कहा—'बहुत अच्छा, आपकी इच्छा न हो तो रहने दीजिये।'

सविता दाँतों से ओठ दबाकर बजरे से उतर गई। उसका मन चाहता था अपना सिर पीट ले, सिर के बाल नोच ले, जेहलम की सतह में बैठ जाय।

उसने कहा—'यह व्यक्ति है जो दावा करता है कलाविद होने का, सौन्दर्य और आकर्षण की मीमांसा करने का!'

हिंसा

खिजियार की बड़ी तारीफ़ सुनी थी और दो सप्ताह वहाँ एकान्त में बिताकर अपनी पुस्तक की पाण्डुलिपि को दोहरा देना चाहता था। डलहौजी में चम्बा रियासत का प्रतिनिधि रहता है। उससे मैंने खिजियार के डाक बंगले में रहने की इजाजत चाही। मुझे समझा दिया गया कि एक नया बंगला आते जाते अफ़सरों के ठहरने के लिये सुरक्षित है और एक बंगले में एक स्काच फौजी अफ़सर ठहरा हुआ है शेष तीसरे बंगले में मैं दो सप्ताह ठहर सकता हूँ।

वहाँ पहिले से ही एक अंग्रेज के और वह भी फौजी अफ़सर के मौजूद होने की ख़बर से एकान्त सुख भोगने की मेरी सम्पूर्ण साध किरकिरी होगई। सोचा, जब यह गोरा अकड़-अकड़ कर मेरे सामने घूमेगा और सब कोई उसको सलाम करेगा, मेरी क्या इज्जत रह जायगी?

डलहौज़ी से खिजयार जानेवाली उतार-चढ़ाव की चक्करदार सड़क पर छड़ी घुमाता और पत्थरों को ठोकर मारता चला जा रहा था। पर मन में यही उलझन लग रही थी। मन में इच्छा होती थी कि मेरे खिजियार पहुँचने के समय यह गोरा या तो सो रहा हो या भीतर अपनी शाम की चाय पी रहा हो, ताकि एक दफ़े में इज्जत से जाकर टिक भर सकूँ, शेष फिर देखा जायगा।

लेकिन हुआ क्या?—ज्योंही पहाड़ी का अन्तिम मोड़ घूमकर खिजियार का खुला मैदान मेरी आँखों के सामने बिछ गया, सामने बंगले के बरामदे

में रात की धारीदार पोशाक पहरे एक गोरा शरीर को फैलाकर अंगड़ाई लेता दिखाई पड़ा।

अँग्रेजी पत्र पत्रिकाओं और पुस्तकों में स्काच लोगों की अनेक विड-म्बना पढ़कर भी उनके प्रति कोई विपरीत धारणा मेरे मन में नहीं बैठी थी परन्तु वह सब तटस्थता एक क्षण में न जाने कहाँ चली गई और मन वितृष्णा से भर गया। उधर से नज़र हटा मानों मैंने कुछ देखा ही नहीं, बाई ओर के ऊँचे देवदारों पर विचित्र पक्षियों को—जो शायद कहीं डालियों में छिपे होंगे—देखता हुआ मैं बँगले की ओर बढ़ा।

अभी बरामदे में पैर नहीं रख पाया था कि वह घिनौना अँग्रेज चिल्ला उठा—'हैलो! गुड्डे, जैन्टलमैन!'

जबरदस्ती चेहरे पर मुस्कराहट लाकर मैंने जवाब दिया—'गुड्डे, थैंक्यू।'

इतने से उस भले आदमी को सन्तोष नहीं हुआ—'बोला सड़क बहुत खराब है, कहिये तकलीफ़ तो नही हुई? लेकिन जगह देखिए कैसी सुन्दर है। यहाँ पहुँच सब कीमत वसूल हो जाती है। कम-से-कम मैं तो ऐसा ही समझता हूँ। इतना कह उसने मुझसे उत्तर पाने की आशा में हँस दिया।

दिल में सोचा—पूरा स्काच है, दमड़ी को दाँत से पकड़नेवाला······ सैर करने आया है लेकिन यहाँ भी 'पूरी कीमत' वसूल करने की बात नहीं भूला।

संक्षेप में उत्तर दिया—'बेशक जगह ऐसी ही है। जैसा सुनकर आया था वैसा ही पाया। मैं सदा एकान्त पसन्द करता हूँ।'

मेरे एकान्त प्रेम के प्रति अनावश्यक कौतुहल प्रकटकर, परिचय बढ़ाने के लिये स्काच ने दो-चार बातें और कहीं। बाहिर घास पर खड़ा-

खड़ा मैं उससे बातचीत कर रहा था। इसी बीच में अनजाने में उसके प्रति मेरी घृणा जाती रही।

स्काच ने बताया—वह भी एकान्त की खोज में दो मास का अवकाश पलटन से लेकर वहाँ आया था। उसे सात सप्ताह वहाँ अकेले ही बीते थे, और इस बीच में एकान्त की साध पूरी होकर वह एकान्त से ऊब गया था। मेरा वहाँ आजाना उसका सौभाग्य था। उसने यह भी आशा प्रकट की कि उसकी उपस्थिति मे मेरे एकान्त में विशेष विघ्न न पड़ेगी।

अपनी बात काटकर उसने कहा—'ग्यारह मील पैदल चल कर आप आये हैं,—अपनी कलाई की घड़ी की ओर देखकर—चाय का समय भी हो गया है। आपके आदमी को तो देर लगेगी,—दास मिनिट में मेरी मामूली चाय तैयार हो जायगी। मैं अकेले चाय पीते-पीते उकता गया हूँ।'

भीतर गुसलखाने में हाथ मुँह धोते धोते मेरा विचार स्काच के प्रति बिलकुल बदल गया। सोचा—आदमी भला जान पड़ता है।

चाय पीते पीते उसने खिजियार के आस-पास का पूरा जुगराफ़िया मुझे समझा दिया। तीन वर्ष पूर्व वह भारत की पूर्वीय सीमा—'युवान' में रह आया था, वहाँ का भी हाल उसने सुनाया। फिर दार्जीलिंग का कुछ जिक्र किया। मालूम होता या उसकी जुबान बेकार पड़ी पड़ी चलने को बेचैन हो गई थी, वह थमना ही न चाहती थी।

चाय की तिपाई के नीचे से घुर घुराने का शब्द सुन मैंने झांककर देखा—एक कबरी बिल्ली आकर बैठ गई है और अधिकार भरी दृष्टि से स्काच की ओर देख रही है। स्काच ने हँसकर कहा—पूसी आगई! और एक तशतरी में थोड़ा दूध डाल बिल्ली के सामने रख दिया। बिल्ली उसे जिह्वा से सपड़ने लगी। मैं उसकी ओर देख रहा था। बिल्ली

अचानक चौंकी और पल मारते में वह बँगले के बरामदे में थी और उसके पंजों में थी एक चुहिया।

स्काच ने कहा—'मार लिया'। उसके स्वर में आर्द्रता का आभास था। मैंने उसके मुख की ओर देखा, उसके चेहरे पर भी एक दुबिधा का-सा भाव दिखाई दिया। बिल्ली चूहे को मौत का खेल खिला रही थी। मैं कभी बिल्ली की ओर देखता और कभी स्काच के चेहरे की ओर ! उसकी अधमुंदी आंखों और माथे की त्योरियों से जान पड़ता था वह गूढ़ विचार में निमग्न है। बिल्ली बहुत देर तक अपना लोभ संवरण न कर सकी और गम्भीरता पूर्वक उस चुहिया को उदरस्थ करने लगी। स्काच ने करवट बदल अपना मुख उधर से हटा लिया।

इस बीच में हम दोनों परस्पर नाम धाम से परिचित हो चुके थे। उसका नाम था मैक्फील्ड। वह डैवनशायर या यार्कशायर पल्टन में लेफ्टीनैण्ट था। कुछ देर विचार तन्द्रा में रहकर मैक फील्ड ने कहा—

"आप लोगों की पूर्वीय विचार धारा में अहिंसा को बहुत महत्व दिया गया है—मैं अनुचित रूप से आपका समय नष्ट नहीं करना चाहता। आपके विश्राम में तो व्याघात नहीं हो रहा ?"

मेरे निश्चय दिलाने पर कि ऐसी आशंका की कोई गुंजाइश नहीं, मैक फील्ड ने कहना शुरू किया,—'मैं कहूँगा यह हिंसा अहिंसा की समस्या बहुत गूढ़ है। में समझता हूँ, संसार का सम्भव और विनाश इसी के अन्तर्निहित है। सभी दार्शनिक हिंसा को इसके व्यापक अर्थों में अति गर्हित बताते हैं, परन्तु प्रकृति हिंसा के बिना एक क्षण भी तो नहीं चल सकती। अभी यह देखिये, क्या इस बिल्ली को आप पापिन कह सकेंगे ?

"मैं आपका समय अधिक देर तक नष्ट नहीं करना चाहता परन्तु, देखिये इस महायुद्ध में मैं बाल्कान अन्तरीप में था—वहाँ हमारी स्थिति

अच्छी नहीं थी। वहाँ कुछ दिन खूब नर संहार हुआ—और देखिये हम लोग नर रक्त को पवित्र बताते हैं!—वहाँ नर संहार करना ही हमारा कर्तव्य था। जिसने जितना अधिक नर संहार किया उसकी उतनी ही अधिक प्रशसा हुई। मुझे भी एक क्रास मिला। हमारे प्रतिद्वन्दी आस्ट्रियन लोग भी ऐसा ही कर रहे थे। हम जिन्हें मारते थे उनसे हमारा व्यक्तिगत कुछ भी द्वेष न था, परन्तु उन्हें मारकर एक संतोष होता था। मैंने हजारों को मरते देखा, सैकड़ों को मारते देखा, परन्तु मैं कभी विचलित नहीं हुआ। वजह यह कि मुझे निश्चय था कि हम जो कर रहे हैं सत्य और न्याय की रक्षा के लिए कर रहे हैं। परन्तु अढ़ाई मास पूर्व जो घटना बन्नू में मेरी आँखों के सामने घटी उसे आपको सुनाना चाहता हूँ। उसने मुझे विचलित कर दिया। हाँ, आप विश्राम करने के लिए तो नहीं जाना चाहते?"

मेरे नकारत्मक उत्तर देने पर उसने फिर कहना शुरू किया,—"अभी इस जनवरी की दो तारीख को हमारे ब्रिगेडियर कर्नल वेटिंग सुबह के समय पल्टन की परेट देखने वाले थे। उस रोज़ धुन्ध इतना गहरा था कि कुछ न पूछिये। मार्च करती हुई कम्पनियों की कदम चापका शब्द तो सड़क पर सुनाई देता था परन्तु दिखाई कुछ फीट की चीज भी नहीं देती थी। इसलिए ब्रिगेडियर साहिब की प्रतिक्षा में मैं सड़क पर ही खड़ा था।

"ब्रगेडियर साहिब की कार आई। उन्हें सैल्यूट कर मैं उनके साथ-साथ आठ-दस कदम ही पल्टन की ओर गया होऊँगा कि—एक आदमी ताज़ी कुत्ते की तरह ब्रिगेडियर साहिब पर लपक पड़ा। इतने में कि और हमारे अर्दली कुछ बीच बचाव करें उस आमदनी ने ब्रिगेडियर साहिब की गर्दन पर हाथ की छुरी के तीन वार कर दिये।

"अपना रिवाल्वर निकाल मैंने उसपर तीन फायर किये। वह—था

अली ! कहकर गिर पड़ा। गर्दन पर दो हाथ पूरे बैठे थे—वे गिर पड़े। मैं किंकर्तव्य विमूढ़-सा हो गया। रक्त प्रबल वेग से जा रहा था, परन्तु घाव ऐसी जगह थे कि, कपड़ा कसकर रक्त को रोका भी नहीं जा सकता था। दो सार्जेन्ट और कुछ अर्दली लोग फायरों की आवज सुन घटना स्थल पर आ पहुँचे। ब्रिगेडियर साहिब की नाड़ी देखने पर हमें उसमें कुछ भी स्पदंन अनुभव न हुआ, फिर भी उन्हें तुरन्त अस्पताल पहुँचाने के लिए मैंने उन्हें कार में रखने का आर्डर दिया।

"इस समय मुझे आक्रमणकारी का खयाल आया। एक अर्दली उस समय भी उसकी ओर रिवालवर ताने खड़ा था। समीप जाकर देखा उसके शरीर से भी रक्त बह रहा था। गोलियाँ उसकी पीठ और कन्धों में धंस गई थीं। वह अल्ला ही अल्ला पुकार रहाथा। उसे भी अस्पताल ले जाना आवश्यक था। कोई दूसरा उपाय न होने से उसके शरीर की मैली चादर में ही उसे लिपटवाकर मैंने कार के पीछे कैरियर पर बँधवा दिया। उस पठान के चेहरे पर भय का मुझे कोई चिन्ह दिखाई न दिया। बड़ी शान्ति से एक शहीद की भांति वह अपनी पीड़ा को चुपचाप सह रहा था।

"अस्पाताल पहुँचने से पहिले ही ब्रिगेडियर साहिब के प्राण निकल चुके थे। डाक्टर ने उसकी रिपोर्ट लिखी। इतने में फ़ोन पर खबर पाकर सिविल सर्जन और मैजिस्ट्रेट भी आ पहुँचे। उन्होंने पठान के जख्मों की रिपोर्ट लिखवाई और इसका बयान लिया। पठान ने सलाम कर कहा—'हुजूर हमको गोली करवा दो बहुत दुआ देगा।'

"मेरा भी बयान लिखा गया। मैंने कहा धुन्द की वजह से साफ तो कुछ दिखाई देता न था, लेकिन ब्रिगेडियर साहिब को जब मैंने सैल्यूट की, उसी समय वह पठान मुझे सड़क से आता दिखाई दिया था। उस

सड़क पर से किसी के आने-जाने से शक या एतराज की कोई वजह नहीं थी। बाद में जो हुआ सो मैं आपको बता ही चुका हूँ।

"मजिस्ट्रेट ने हिदायत की कि पठान की देखभाल अच्छी तरह से की जाय। भरसक उसे मरने न दिया जाय। सम्भव है किसी भयंकर षड्यंत्र का इन्कशाफ़ हो।

"हम लोगों का ख़याल था कि हो-न-हो यह पठान किसी वक्त ब्रिगेडियर साहिब के यहाँ नौकर रहा होगा और साहिब की किसी बात से अपना अपमान समझ मौका पा उसने बदला ले लिया। लेकिन उसके मुँह से कुछ और सुना।

"अगले दिन जब मजिस्ट्रेट उसे फिर देखने आये वह शान्त और व्यवस्थित था। उसके शरीर से गोलियाँ निकाली जा चुकी थीं। वह अपनी प्रार्थना में रत था। पूछने पर उसने अपना नाम धाम बता दिया। वह वज़ीरिस्तान के किसी गांव का रहनेवाला था। उसका सगा सम्बन्धी या रिश्तेदार कोई शेष न था। गाँव वालों से झगड़कर वह बन्नू आ बसा था। उसने कई जगह नौकरी की, और ब्याह भी किया। किस्मत की बात—नौकरी छूट गई और औरत को कोई भगा ले गया। कभी यहाँ कभी वहाँ सड़क कूटने की मज़दूरी कर वह पेट भरता रहा। अब कमज़ोर हो जाने से यह काम इससे होता न था। चोरी उसने नहीं की यही जानकर मुझे विस्मय हुआ। इस तबके पठान प्रायः चोरी में बहुत दक्ष होते हैं। वह कुछ धार्मिक वृत्ति का व्यक्ति जान पड़ता था।

"जीवन में सुख की कोई आशा शेष न थी। यदि कोई आशा थी तो केवल मरकर बहिश्त पहुँचने पर। लेकिन बहिश्त में सुख पाने के लिए भी तो उपाय चाहिये। दान पुण्य के लायक उसके पास क्या रखा था, जिसे खुद खाना तक नसीब न हो। बदन के कपड़े और एक छुरी, यही उसकी

सम्पत्ति थी। और मन में सुख और सम्मान की इच्छा। दो दिन जब उसे रोटी नहीं मिली तो उसने अपनी छुरी बेच देनी चाही। पर उसे छुरी का कोई गाहक न मिला। निराश हो उसने उस छुरी से आत्महत्या द्वारा अपने दुखों का अन्त कर देना चाहा परन्तु उसकी धर्म-भावना उसके मार्ग में आ खड़ी हुई। इस विचार से वह काँप उठा कि खुदकशी करके उसे कभी न खतम होनेवाली दोज़ख़ की आग में अनन्त काल तक जलना पड़ेगा। उमर भर उसने मुसीबत झेली परन्तु वह दोज़ख़ की आग में जलने के लिए तैयार न था।

"खाली पेट लेटे लेटे एक दफे बहिश्त पहुँच दूध और शहद के दरिया के किनारे, खजूरों के बाग़ में, दाढ़ी में हूरों के हाथ से सुगन्ध मलवाने के ख़याल से वह मतवाला हो उठा। पर उपाय? सोचते सोचते उसे ख़याल आया अगर वह गाज़ी हो जाय? इसलिए वह चलकर छावनी पहुँचा ताकि परेड में जुम्मे के रोज सबसे बड़े काफ़िर साहब को मार कर शहीद होजाय।

"उसे आशा थी कि उसे तुरन्त गोली से उड़ा दिया जायगा। लेकिन हाय क़िस्मत! गोलियों से शरीर चलनी होजाने पर भी वह शहीद न होपाया। एक गहरा और लम्बा श्वास लेकर उसने कहा—'ख़ैर अब फाँसी होजायगी।'

"फाँसी के खयाल से वह भयभीत न था, परन्तु उसे यह सम्मान-जनक नहीं जान पड़ता था। पठान का मुक़द्दमा अदालत में गया वहाँ भी मुझे बयान देना पड़ा। बयान देते समय मैं जानता था कि मैं उसे फाँसी के तख़्ते की ओर ले जा रहा हूँ। उसकी ओर आँख उठाकर देखने का मुझे साहस न हुआ।

उसे फाँसी का हुक्म होगया। मैं सिर लटकाये अदालत से लौटा—

मानो मुझसे कुछ अनुचित कार्य होगया हो।"

"उस दिन से जब कभी मृत्यु या हिंसा का चर्चा किसी रूप में सुनता या देखता हूँ, मुझे उस गार्जी की बात याद आजाती है। उसके घोर अपराध के प्रति घृणा न होकर मन में करुणा ही हो आती है। अच्छा अब बताइये, यदि इस बिल्ली को ही उठाकर फांसी पर लटका दिया जाय?

"..........लेकिन क्या हत्यारों को यों खुला छोड़ दिया जा सकता है?..........

"क्या हिंसा अहिंसा का विवेचन हम इरादे या विचार से कर सकते है.........."

समाज सेवा

विजय दशमी की आठ छुट्टियाँ मनाने के लिए नाथ लाहौर आया था और मैं उसके आतिथ्य में उपग्रह की तरह उसके साथ-साथ लटकता फिर रहा था।

'वन्देमातरम' में एक विज्ञापन पढ़ कर नाथ ने कहा—'आज सांझ को एस. पी. एस. के. (Society for the promotion of scientific knowledge) के हाल में चलना होगा।'

पूछा—'क्यों वहाँ क्या है ?'

उत्तर मिला—'एक लेक्चर है !'

लेक्चरों के प्रति नाथ के हृदय में ऐसा अनुराग उत्पन्न हो गया है, यह मैं नहीं जानता था। पूछा—'कैसा लेक्चर ?'

नाथ ने कहा—कुछ ठीक याद नहीं पड़ता, पर लेक्चर है। जादू के लालटैन से लेक्चर है, शाम के पाँच बजे 'बन्दे बन्देमातरम' में विज्ञापन था। तुम्हें खयाल नहीं ?'

हँस कर मैंने कहा—'जादू की लालटैन ! तो चलो सिनेमा ही क्यों नहीं चलते ? इस ज़माने में जादू की लालटैन तो ऐसे समझो जैसे बैल-गाड़ी पर सफर करना।'

नाथ ने उत्तर दिया—'नहीं, तुम नहीं समझते।'

मन में हँस कर रह गया। एक ज़माना था, नाथ हमारे कौलिज के 'चलते' गिरोह का मनोनीत नेता था। उस समय यह शेखी उसे शोभा दे सकती थी। परन्तु अब नाथ लाहौर से दूर सहारनपुर में रहता है। यदि

वह अब भी लेक्चर, सिनेमा और थियेटर के बारे में हम लोगों की अपेक्षा अधिक जानकारी का दावा करे तो दुस्साहस के अतिरिक्त और क्या कहा जायगा ?

मन ही मन मैंने कहा —'देखो बेटा, देखो ! जादू की लालटैन ही देखो । सहारनपुर में कठपुतलियों का नाच देखते होगे, तुम्हारे लिए यही बहुत है । तुम क्या जानो 'टाकी' और 'रिंक' क्या बला है ?

हाल में विशेष भीड़ नहीं थी । लेकिन नाथ कुर्सी पर न बैठ दांई ओर की दीवार के सहारे ही खड़ा हुआ और मैं उसकी अर्दल में मौजूद था । व्याख्याता थे प्रो० आदरे और व्याख्यान का विषय था—'सभ्यता के विकास में नारी का स्थान !'

प्रोफ़ेसर आदरे ने दक्षिण द्वीपों के अर्ध जंगली समाज, अस्ट्रेलिया के बुशमैन तथा नीग्रो और रैडइण्डियन लोगों की सामाजिक व्यवस्था के चित्र दिखाकर यह बताया कि समाज में संयोजक और व्यवस्थापक का स्थान दरअसल नारी का है । पुरुष समाज निर्माण और सुव्यवस्था के लिए नारी का आभारी है और भविष्य में नारी फिर अपना स्थान ग्रहण कर समाज को पागल होजाने से बनायेगी ।'

व्याख्यान बुरा नहीं था । परन्तु मेरा ध्यान उसमें न लगा । नज़र उठाकर नाथ की ओर देखा—आपकी दृष्टि लालटैन के चित्रों की ओर न थी आप बांई ओर पहिली तीन आधी लाइनों में बैठी हुई महिलाओं की ओर ही देख रहे थे । विशेष निरूपण करने पर जान पड़ा, पहिली लाइन की पहिली कुर्सी पर ही उसका लक्ष था ।

कोहनी से टोहका देकर मैंने पूछा—'क्या यही लेक्चर सुन रहे हो ?'

मेरे प्रश्न का उत्तर न दे उसने पूछा—'जानते हो वह कौन है ?'

वह चेहरा मेरे लिए—विशेष परिचित नहीं था । पूछा 'क्यों ?'

एक गम्भीर निश्वास छोड़ नाथ ने कहा—'देखते नही आधुनिक रमणी समाज में जिन तीन 'तकारों' सुशिक्षिता, सुसंस्कृता और सुलंकृता, का होना जरूरी है उनका इसमें कितना प्राचुर्य है ?'

नाथ का कहना ठीक था। आयु, शास्त्र की व्यवस्था से मुग्धावस्था को पार कर जाने पर भी वहाँ मोह की मात्रा यथेष्ट थी। जल के किनारे उगे फूले हुए, वायु के झोंके से लहराते हुए कास के समान पग-पग पर लचकते हुए उसके बेत्र-लता के समान लचीले शरीर से लावण्य झड़ा पड़ रहा था। मुख के उस कच्चेपन से—मैं नहीं समझता वह पाउडर होगा—कौमार्य की पुष्टि हो रही थी। उस पर वह झीनी पोशाक, बिना फ्रेम की चिमटीदार ऐनक, संस्कृति के सब चिन्ह मौजूद थे।

नाथ की ओर देखकर मैंने पूछा—'प्रेम तरंग (Love wave) का जोर हो रहा है ?

गम्भीर मुद्रा से उसने उत्तर दिया—'चुप रहो'।

व्याख्यान समाप्त होने पर जब वह रमणियों में श्रेष्ठ रमणी, ललित उपेक्षा से आधे सिर पर अंचल टिकाये, बिना बांहका ब्लाउज पहिरे नाक पर चिमटीदार ऐनक को सम्भालते हुए चली तो नाथ सचमुच मंत्र मुग्ध की भाँति उसकी ओर देख रहा था।

उपस्थित जनता में हम लोगों के परिचित श्रीयुत विष्णु और श्रीमती विष्णु भी थे। पूछने पर पता लगा, उस भव्य रमणी रत्न का नाम था—कुमारी उषा 'मेहता'।

विष्णु से नाथ ने पूछा—'क्या उनसे परिचय नहीं हो सकता ?'

विष्णु ने परिचय की इच्छा का कारण जानना चाहा। मैंने समझाया कि नाथ पर प्रेम बाण चल गया है और वह भी प्रथम दृष्टि में।

विष्णु ने निरुत्साह की हँसी हँसकर कहा—''असम्भवम्' वह देखने में

जैसे संगमर्मर की मूर्ति है भीतर से भी वैसे ही ठण्डी और उद्रेक शून्य ।'

श्रीमती विष्णु ने अभिमान से जरा सिर ऊँचा कर कहा—'उसने विवाह न करने की प्रतिज्ञा करली है । कितनी ही जगह वह इनकार भी कर चुकी है ।'

विष्णु ने विद्रूप से कहा—'वह कामिनी का आधुनिक संस्करण है । पुराने जमाने के 'काम' के पांचों बाण उस पर व्यर्थ हैं ।'

श्रीमती विष्णु ने नारी जाति के सम्मान की रक्षा के अभिप्राय से विरोध में कहा—'स्त्री समाज की सेवा को उसने अपने जीवन का व्रत बना लिया है । उसीमें वह अपनी आयु लगा देना चाहती है ।' इसमें बुराई क्या है ?'—और भी अधिक उत्साह से उन्होंने कहा—'भाई विवाह वह कभी नहीं कर सकती । विवाह किसलिए किया जाता है, यह वह जानती ही नहीं ।'

सहानुभूति से मैंने नाथ की ओर देखा, वह पर्वत की भांति अचल था । उसने कहा—'आप एक दफे उन्हें अपने यहाँ निमन्त्रित कीजिए शेष देखा जायगा ।'

निमन्त्रण किस बहाने दिया जाय ? यही बड़ी भारी समस्या होगई नाथ को कभी-कभी ऐसी सूझ जाती है कि जिसपर किसी राष्ट्र का बनना बिगड़ना निर्भर हो सकता है । विष्णु के कन्धे पर हाथ रख उसने कहा—'क्यों नहीं तुम मेरे विदेश से लौटने के उपलक्ष में एक पार्टी दे देते ?'

खूब ! चीनी बनाने के काम का अनुभव प्राप्त करने के लिए नाथ छः मास जावा द्वीप में रह आया था । वहाँ से लौटे हुए भी उसे प्रायः नौ मास हो चुके थे । तब से वह अपने चीनी के कारखाने में व्यस्त था । यह था उसका विदेश से लौटना ! इसमें इतना सत्य जरूर था कि जावा से लौटने के बाद से नाथ ने विष्णु का आतिथ्य ग्रहण न किया था ।

एक निमन्त्रण पत्र घड़ा गया,—

'प्रिय बंधु श्री प्रमोदनाथ के दक्षिण द्वीपों के भ्रमण से लौट आने के उपलक्ष में–बार–तिथि–को संध्या समय चार बजे आप मेरे मकान—गली में चाय गोष्ठी में सम्मिलित होने की कृपा कीजिये—अति कृपा होगी।'

श्रीमती विष्णु मिस मेहता की सहपाठिन थीं। मिस मेहता के कार्ड पर उन्होंने अपनी ओर से भी एक पंक्ति और जोड़ दी।

हमलोग लगे गोष्टी के प्रबन्ध में। नाथ का हुकुम था, इंतज़ाम पुर-तकल्लुफ़ हो और नाथ स्वयं सार्वजनिक पुस्तकालय में जा विश्वकोश में से जावा-सुमात्रा के सम्बन्ध में गवेषणा करने लगा।

निमन्त्रितों की संख्या परिमित थी। मिस मेहता समय से कुछ देर बाद एक मोटर पर उपस्थित हुई। नाथ पहिले ही मालूम कर चुका था कि मिस मेहता के यहाँ अपनी कार नहीं है। इससे अन्दाज़ा यह हुआ कि कार मँगनी की है। मिस मेहता के हाथ में अँग्रेज़ी का वह साप्ताहिक था जो शायद ही कोई गम्भीर पाठक पढ़ता हो। इससे कुमारी जी की साहित्यिकता का भी अनुमान होगया।

कुमारी जी ने आधी अंग्रेज़ी और आधी पंजाबी में कहा—'So sorry मैं लेट होगई'–और उपस्थित लोगों को झुककर अभिवादन किया। श्रीमती विष्णु ने परिचय कराया—'मिस उषा मेहता, जलविद!' और फिर नाथ की ओर देखकर कहा—'मि० प्रमोदनाथ शुक्ल, आप दक्षिण द्वीपों में छः मास भ्रमण करके आये हैं।'

नाथ की प्रशान्त गम्भीरता और भद्रता की सीमा न थी। उसने विनय से मेज़ तक झुककर परिचय ग्रहण किया और जब तक मिस मेहता बतख की गर्दन की तरह लचक कर बैठ नहीं गई तब तक खड़ा ही रहा।

चाय की पहिली प्याली समाप्त होते न होते गोष्ठी में प्रसंग चल

पड़ा दक्षिण द्वीपों का। नाथ ने कहा—योरप की अपेक्षा उसकी सहानुभूति एशिया की संस्कृति से ही अधिक है इसीलिए उसने यूरोप न जाकर प्राचीन सभ्यता के इतिहास के 'एलबम' इन द्वीपों की ही यात्रा की—, और जो कुछ उसने इन महत्वपूर्ण द्वीपों में देख पाया वह संसार के किसी भी अन्य देश में अप्राप्य है। उसने बोलते बोलते इन द्वीपों की सामाजिक समस्याओं से विशेष जानकारी प्रकट की।

मिस मेहता ने अत्यन्त गम्भीरता से प्रश्न किया—Indian women (भारतीय स्त्रियों) की अपेक्षा आपने वहाँ की women (स्त्रियों) में क्या फरक देखा ?'

उत्तर में निहायत वाक पटुता से नाथ ने योरप और अमेरिका की सभी स्त्री संस्थाओं का वर्णन शुरू किया। मजा यह कि किसी गधे ने न पूछा कि तुम योरप या अमेरिका कब गये और उसका यहाँ के प्रसंग से क्या सम्बन्ध है ?

नाथ ने मौका देख मिस मेहता को कई दफ़े 'मिस ऊषा' और 'ऊषा जी' कह कर सम्बोधन किया और फ़िक़रे के फिक़रे अंग्रेज़ी में बोल कर यह प्रकट करदिया कि इस यात्रा के बाद से अंग्रेजी में बोलना ही उसके लिये अधिक स्वाभाविक है। वह यदि पंजाबी बोलता है तो केवल दूसरों की सुविधा के लिये।

नाथ ने कहा—'जितना धन और श्रम देश में राजनैतिक आन्दोलन और दूसरी समस्याओं पर व्यय हो रहा है यदि उसकी आधाभी स्त्रियों की उन्नति पर हो तो फल चौगुने से अधिक हो सकता है। मिस मेहता सुनकर फड़क उठीं। नाथ ने कहा—सुविधा होते ही वह इस विषय पर एक पुस्तक लिखने वाला है। लेकिन यह काम दरअसल स्वयम् स्त्रियों के करने का है। पुरुषों का अधिकार केवल सहायता करने का है।'

नाथ की यह वक्तृता मिस ऊषा को देववाणी के समान जान पड़ी। नाथ ने कहा—इस कार्य के लिये देशव्यापी आन्दोलन और संगठन की आवश्यकता है।' श्रीमती विष्णु को सम्बोधन कर, मिस मेहता के अभिप्राय से उसने कहा—'स्त्रियाँ केवल पुरुषों की सेवा का ही साधन क्यों बनी रहें; उनका अपना स्वतन्त्र जीवन क्यों न हो ? इस आन्दोलन की धुरि लेकर आप लोगों को आगे बढ़ना चाहिये।'

नाथ के इस व्याख्यान से श्रीमती विष्णु भी बहुत प्रभावित हुईं। मिस मेहता ने कोमल स्वर में कहा—'मैं भी कुछ लिख रही हूँ, यदि आपको समय हो तो कुछ मेरी सहायता कीजियेगा।'

मैं नाथ के समीप ही था। खांसने का बहाना कर रूमाल मुँह के सामने कर मैंने धीरे से उसके कान में कहा—'मान गये गुरु' !

नाथ को उत्तर देने की फ़ुर्सत नहीं थी। मिस मेहता के उत्तर में नाथ ने जो कुछ कहा उससे मालूम हुआ कि उसने अपना जीवन सामाजिक क्रान्ति के अर्पण कर दिया है। इस प्रकार के किसी भी कार्य में सहयोग देने के लिये वह 'सर्वतोभावेन' तत्पर है।

गोष्ठी समाप्त हुई। आमंत्रित लोग चलने को तैयार हुए। नाथ ने मिस मेहता की ओर अग्रसर होकर कहा—"आपकी कार तो आई नहीं अभी तक ?'

मिस मेहता ने उपेक्षा से उत्तर दिया—'ऐसी क्या जरूरत है, धूप तो चली ही गई है, मुझे समीप ही एक फ़्रेण्ड के यहाँ होते हुए जाना है।'

नाथ यह तो जान ही चुका था कि मिस मेहता पुरानी अनारकली में रहती हैं। उसने अपनी सोने की रिस्टवाच की ओर देख कर कहा—'समय तो अधिक है नहीं, मुझे दो एक जगह जाना है, चौबुर्जी भी जाना है, एक टैक्सी मँगवालो !'

यह चपड़ासी का काम मेरे सिर पड़ा। उसे कोसते हुए समीप के

मकान से फ़ोन कर एक टैक्सी मँगा कर मैंने हाज़िर करदी। मेरी अनु-पस्थिति में ही उन दोनों के गाड़ी में एक साथ जाने की बात तय होगई।

अगले दिन संध्या को चार बजे मिस मेहता के यहाँ नाथ का निमंत्रण होगया। रात भर नाथ गूढ़ विचार में रहा। सुबह चाय पीने के बाद मुझे उसके साथ प्यारेलाल एण्ड संस मोटर वाले के यहाँ जाना पड़ा। नाथ ने वहाँ पहुँच एक गाड़ी देखने की इच्छा प्रकट की।

मैनेजर ने अत्यन्त अभ्यर्थना पूर्वक पूछा—'किस मेकर की मोटर आप खरीदीयेगा ?'

नाथ ने उपेक्षा से उत्तर दिया—'घर से कसम खाकर नहीं चला हूँ, जो भी पसन्द आजाय।'

मैनेजर ने गाहक के मज़ाक का स्वागत दाँत निकाल कर किया और एक आस्टिन के पास लेजाकर हमें खड़ा कर दिया। नाथ ने 'मौरिस' और 'डौज' का ज़िक्र कर कहा—'मैं सदा छः सिलिण्डर की गाड़ी पसन्द करता हूँ। ग़लती से एक चार सिलिण्डर खरीद ली है। उसने बहुत परेशान किया, आखिर निकाल देनी पड़ी।'

कार के साथ ही साथ उसने दो-तीन किस्म की लारियों की भी क़ीमत दरयाफ्त की। आख़िर एक आस्टिन पर सौदा तै हुआ। पहिये बदलवाने की ज़रूरत थी, कुछ फालतू चीज़ें भी उसमें और ज़रूरी थीं।

साढ़े पांच हज़ार का बिल बना। मैं हैरान था—क्या नाथ आज फजीहत कराने पर तुला है ?

बिल हाथ में ले उसने कहा—'गाड़ी फिट होजाने पर शौफर आकर टेस्ट करेगा और वही चेक देकर गाड़ी ले जायगा।' बिल उसने जेब में रख लिया।

दुकान से अपने को सही सलामत निकल पाया देखकर मैंने हाथ

जोड़ उसे प्रणाम कर कहा—'धन्य हो गुरू।'

इसके पश्चात् नारायणदास एण्ड सस मोटर मर्चेण्ट की बारी आई। यहाँ एक 'बूइक सैलून' खरीदने का तय हुआ। साढ़े छः हजार का बिल जेब में डाल और शाम तक गाड़ी तैयार होजाने पर शौफर के चेक दे जाने और गाड़ी लेजाने की बात यहाँ भी तय हुई।

यहां से हयात फर्नीचर वाले के यहाँ पहुँचे। एक 'रोज़ वुड' का ड्राइंग रूम सेट, एक ड्रेसिंग टेबल और गार्डन सेट पसन्द किया गया। साढ़े सत्रह-सौ का बिल जेब में रख हम लोग कृष्णा दरीज़ स्टोर में गये। यहां कुछ कालीन और दरियां पसन्द की गई। डेढ़ हज़ार का बिल जेब में रख शाम को मुंशी के आकर चेक देकर सामान लेजाने का वायदा कर हम लोग बाहिर आये।

घड़ी में साढ़े तीन बज गये थे। पैदल ही हम लोग म्युनिसिपल मार्केट की तरफ़ लौटे। चार बजने में ठीक छः मिनट रह जाने पर टैक्सी पर सवार हो मुझे अकेला छोड़ नाथ मिस महता के यहां पहुँचा।

× × ×

गाड़ी की आवाज आते ही मिस मेहता हाथ में 'ट्रिब्यून' लिये बरामदे में प्रकट हुई। नाथ ने मुस्करा कर कहा—'भय था लेट होजाऊँगा परन्तु शोफर समय पर ले ही आया।'

अपनी कलाई को ऊपर उठाते हुए मिस मेहता ने कहा—'आप तो बिलकुल ठीक समय पर ही आये हैं।'

नाथ ने उत्तर दिया—'विदेश में समय का इतना खयाल रखना पड़ता है कि मुझे अब उसकी आदत हो गई है, जरा भी अव्यवस्था होने से बड़ी कलखसी होने लगती है।'

समय के पाश्चात् मौसिम का चर्चा चला। नाथ ने बताया लाहौर की अपेक्षा सहारनपुर का मौसिम कहीं अच्छा है।

तब काम की बात शुरु हुई। नाथ ने जापान के स्त्री समाज से भारत के स्त्री समाज की तुलना कर कई तजवीजें सुधार की पेश की। हिन्दु समाज के पारिवारिक जीवन की आलोचना हुई। इस गम्भीर विवेचना को मिस मेहता ने जिज्ञासुभाव से सुना। बात-चीत का कांटा बदला, दूसरी लाइन आई :—

नाथ ने चाय की प्याली की ओर देखकर कहा—'यह देखिये, छोटी-छोटी बातों से जीवन का कितना घनिष्ठ संबंध रहता है। यह प्याली कितनी मामूली चीज है परन्तु इसका भी हम पर कितना प्रभाव पड़ता है। कितनी देर से मैं उसे देख रहा हूँ और इसे चुनने वाले की कला सूझ और परख की सराहना कर रहा हूँ। इससे चाय पीने में एक प्रकार का विशेष संतोष होता है। एक मेरा जीवन है, जिसमें सब काम मैशीन की तरह होता है, कला और सौन्दर्य का उसमें चर्चा नहीं। कोठी है शायद आवश्यकता से कुछ बड़ी है परन्तु मेरे रहने लायक चार कमरे भी ढंग के नहीं। बहरे को मतलब है अपनी तनख्वाह से। बंगले के चारों ओर माली फूल न बोकर तरकारी बोता है, शायद इससे कुछ आमदनी उसे होजाती हो। इस दफ़े यह निश्चय करके आया था कि घर को घर बनाऊँगा परन्तु सोचता यह हूँ कि अपनी परख से जो कुछ चुनकर लूंगा उसे स्वयम भी पसन्द कर सकूँगा या नहीं। मेरा हिसाब तो यह है कि दुकानदार ने जो कुछ सबसे अच्छा बता दिया, लेलिया। लेकिन दुकानदार को मतलब रहता है सबसे पहिले भद्दी चीज़ निकाल देने से।

'आज कुछ फर्नीचर खरीदने गया था। शौक जरूर है, परख हो न हो। आपके यहां ढंग और सिस्टम देखकर ईर्ष्या होती है। काश! मेरी भी जगह ऐसी ही होती। इस कालीन को ही देखिये, क्या खूब टैस्ट है? और फिर जिस वजह से बिछाया गया है?'

'मैंने भी एक कालीन खरीदा है, जेब से बिल निकालते हुए—यह देखिये दूकानदार ने असली ईरानी बताया है, आगे उसका ईमान जाने—मिस मेहता ने बिल की ओर देखा, उनकी आंखें चढ़ गईं—फर्नीचर के बारे में भी मुझे दुकानदार की ही मान लेनी पड़ी। यह देखिए—ओफ़! वह शायद गाड़ी है, हाँ, यह देखिये,—अच्छा आप गाड़ी कौनसी पसन्द करती हैं ?'

मिस मेहता की कनपटियों पर खून का वेग बढ़गया। उसकी एक सहेली के यहाँ 'ओवर लैण्ड' गाड़ी थी और दूसरी के यहाँ 'बूइक'। झेंपते हुए उसने कहा—'ओवर लैण्ड भी कुछ बुरी नहीं वैसे बूइक सस्ती रह सकती है।

नाथ ने कहा—'ठीक, परन्तु मेरी हालत देखिये! पिता जी ने एक फोर्ड खरीदी थी। उसी छकड़े पर संतोष किये बैठा था। अब एक आस्टिन और एक बूइक सैलून ले चला हूँ। आस्टिन घूमने-फिरने के लिये और बूइक सेलून मेरठ, देहली और देहरादून आने-जाने के लिये। यह नहीं कि मैं निरा जड़ हूँ परन्तु केवल अपनी एक जान के लिये कुछ करते ग्लानि-सी होती है।'

इस सरलता से मिस मेहता की समवेदना पिघल पड़ी। उन्होंने एक दीर्घ निश्वास छोड़ कर कहा—'अकेला जीवन वास्तव में नीरस होता है।'

उन्होंने पुकारा—'माया!'

नौकर हाज़िर हुआ। उन्होंने कहा—'यह चाय ठण्डी हो गई नये सिरे से बना लाओ।'

लज्जा से नाथ ने कहा—'यही देख लीजिये, यही मेरा हाल है। सभी काम इस ढंग से होते हैं। यहाँ आपकी समवेदना ने मुझे बचा लिया। वर्ना दो ही रास्ते थे। या तो ठण्डी पी जाता या फिर बिना पिये ही रह जाता।'

एक विचित्र अनुभूति में मिस मेहता के चेहरे की त्वचा झमझमा उठी और आँखें उन्मीलित प्राय हो गईं।

सोचा था—साढ़े पाँच तक नाथ लौट आयगा परन्तु जाकर कहीं लगभग दस बजे के आप आये। पूछा—'गुरू इतनी देर कहाँ थे ?'

उत्तर मिला—मिस मेहता के साथ सिनेमा चला गया था।

तीन दिन तक नाथ प्रायः गायब-सा रहा। चौथे रोज़ सहारनपुर जाने से पहले उसने अत्यन्त गम्भीरता से कहा—'कम-से-कम जाकर मुझे कोठी का रंग रूप तो ठीक करना है। तुम कचहरी खुलते ही मेरी दर्खास्त सिविल मैरिज के लिये देदेना।'

मैंने विस्मय से पूछा—'क्या ? उसने गम्भीर भाव से कहा—'यही।'

इस समाचार से मेरे पेट का पानी उबलने लगा। दौड़ा-दौड़ा श्रीमती विष्णु के यहाँ पहुँचा और ख़बर सुनाकर कहा—'देख लिया भाबी' ?

उन्होंने अपनी भूल स्वीकार न कर कहा—'तो इसमें हर्ज ही क्या ? दोनों मिलकर समाज सेवा करेंगे।'

× × ×

दो वर्ष पश्चात मसूरी जाते समय में नाथ के यहाँ एक दिन के लिये ठहरा। उस समय भी पुरानी कोठी के अहाते में एक जर्जर फोर्ड गाड़ी खड़ी थी और खाली ज़मीन में 'पिटूनिया'[१] की जगह कुम्हड़ा और 'हाली-हाँक'[२] की जगह भिण्डी फूल रही थी। प्रायः डेढ़बरस की एक लड़की फ्राक पहिरे ठमकती-ठमकती भीतर के किसी कमरे से आई और बरामदे में बैठे स्पेनियल कुत्ते का आलिंगन कर उसका कान चबाने का यत्न करने लगी। इस अनाचार के विरोध में भीतर से स्त्री कंठ की आवाज़ आई 'ना-मुन्नी छी' !

१+२ विलायती फूल

आवाज़ का अनुसरण करती हुई निकलीं एक महिला। रंग तो जरूर मिस मेहता का था परन्तु शरीर में लचकने की जगहें भर गई थीं। बिना फ्रेम की चिमटीदार ऐनक गायब थी। सफ़ेद बारीक साढ़ी पर दो एक हल्दी के दाग भी थे।

नमस्ते, कर मैंने पूछा—'भाभी कहिए—समाज सेवा का काम कैसे चल रहा है ?'

भाभी उत्तर की तलाश में ही थीं, कि नाथ ने हाथ की सिगरेट का आखिरी कश खेंच कर कहा—'बड़े जोरों से।'

प्रेम का सार

उन दिनों पेशावर से चरस की आमद गुप्त रूप से इतने भयंकर परिणाम में हो रही थी कि एक्साइज के साथ पुलिसवाले भी परेशान थे। न दिन को आराम न रात को चैन। गुप्त रूप से नशीली चीजों का व्यापार करने वालों को पकड़ने में बुद्धि की मौलिकता के लिए जितनी गुँजाइश है उतनी दूसरे जुर्मों में नहीं। किस रूप में किस चीज़ के भीतर चरस व्यापक नहीं, यह नहीं कहा जा सकता।

मैं लाहौर के बड़े स्टेशन के सामने टहलता हुआ तेज़ नज़र से पेशावर-एक्सप्रेस के मुसाफिरों को ताड़ रहा था। सड़क को बीचोंबीच से चीरती हुई, लम्बी चादर में सिर से पैर तक लिपटी एक बुढ़िया कुछ दुविधा की सी अवस्था में मेरे सामने से निकली। उस औरत को देख मुझे कुछ सन्देह हुआ।

इतने दिन पुलिस में काम कर यही सीखा है कि जहाँ सन्देह करने के लिए कोई प्रत्यक्ष कारण न भी हो वहाँ भी सन्देह करना चाहिए। कितनी ही बुरकापोश भले घर की स्त्रियों के असबाब में अनेकों बेर सेरों चरस निकल चुका है तो फिर किसी 'घाघ' ने इसी बुढ़िया के ज़रिये दो-चार सेर निकालने की सोची हो, तो क्या अचरज ?

'ए माई ! ओ बुढ़िया ! इधर आओ !'—मैंने उसे पुकारा। एक हाथ से अपनी छोटी-सी गठरी को सीने पर दबाये दूसरे हाथ से चादर सम्भालते हुए एक बेर मेरी ओर देख, मेरी पुकार को अनसुनी कर, वह अपनी राह चलती गई।

सन्देह पुष्ट होने की वजह थी। जरा डांटकर मैंने कहा—'इधर आओ।' मानों उसने कुछ सुना समझा नहीं। फिर एक दफ़े मेरी ओर देख वह चली जाने लगी। साथ के कांस्टेबल ने आगे बढ़ उसे रोक लिया।

उसके हाथ की छोटी-सी पोटली के ओर संकेत कर मैंने पूछा—'इसमें क्या है?' हाथ की उँगलियों को नचा, व्याकुलता भरे अस्पष्ट स्वर में उसने जो कुछ 'अलॅम पलॅम' कहा वह मेरी समझ में कुछ न आया। उसकी चालाकी भांप कर मैंने अपने प्रश्न को पश्तो में दुहराया। फिर भी व्याकुलता से गिड़-गिड़ाकर उसने जो कुछ कहा, मैं कुछ समझ न सका।

यह औरत पागल बन रही है, या दरअसल पश्तो और पंजाबी न समझ कोई तीसरी ही बोली बोलती समझती है, यह मैं निर्णय न कर सका। साथ के सिपाही ने उसे जबरदस्ती समझा देने के अभिप्राय से खूब ऊँचे स्वर में डांटकर पूछा—'इसमें क्या है?'

पर फल कुछ न हुआ। आखिर, अगर यह औरत इतनी ही बे-बूझ है तो अकेली लाहौर जैसी जगह में पेशावर-एक्सप्रेस से और फिर रात के वक्त आई कैसे? यहाँ इसका क्या काम है? मैं इसी उधेड़ बुन में लगा हुआ था। उस समय कासिम—साथ के सिपाही—ने दोनों हाथों से इशारा कर कहा—'हती कश्मीर-हती'?

औरत ने एक लम्बा सांस लेकर हामीं भरी। यह तो समझा कि यह औरत काश्मीरन है परन्तु इससे भी तो इसकी गठरी में चरस हो सकता है या इसके पीछे कोई दूसरा रहस्य हो सकता है। इस बात का ही क्या प्रमाण कि यह दिन-रात लाहौर आने-जाने वाले बुर्दाफरोश काश्मीरियों के गिरोह में से नहीं है? जिस तरह वह अपनी गठरी को हाथ नहीं लगाने दे रही थी शक के अलावा कोई राह ही नहीं थी। कासिम ने

काश्मीरियों के लिंग भेद अज्ञान की नकल करते हुए पूछा—'कित्थे जान्दा ?' (कहाँ जा रही हो ?) फिर जवाब नदारद।

कासिम ने कहा—'जनाब यह औरत बदमाश है, मकर साध रही है।'

कुछ सोचकर मैंने कहा—'एक टागे पर इसे बड़ी कोतवाली ले चलो।' बड़ी हायतोबा के बाद वह टांगे पर बैठी।

पीर हुसैन कान्सटेबल काश्मीरी है। सैयद होने के नाते उसके आध्यात्मिक प्रभाव का भी अन्त नहीं। उसे बुला मैंने उस औरत से बात करने को कहा। पीर हुसैन ने समीप पहुँच, आश्वासन देने की मुद्रा में औरत को सम्बोधन कर अपनी अगम भाषा में दो वाक्य कहे और औरत का भय काफ़ूर हो गया। वह उसके समीप सिमट आई और आँखों पर अपनी मैली चादर की खूँट रख कर सिसकती हुई बहुत-कुछ बक गई।

पीर हुसैन ने बताया कि वह अपने मर्द का पता पूछ रही है। उसी को ढूँढ़ने लाहौर आई है। कई बरस हुए वह कमाई करने लाहौर आया था पर लौटा नहीं। कई दफ़े चिट्ठी लिखने पर भी वह नहीं लौटा। उसी को लिवा लेजाने के लिये यह आई है और लेकर ही जायगी।

मैंने कहा—'मर्द तो देखा जायगा। पहिले इसकी गठरी खुलवाओ' पीर हुसैन के कहने से उसने कुछ संकोच से गठरी खोलदी। चिथड़े लगी चादर के एक टुकड़े में दो-एक और मैले कपड़ों के टुकड़ों में कई दिन की बासी मकई की रोटी का चूरा था। काश्मीरी ढंग की एक पुरानी मर्दानी वास्कट भी थी जिसमें जगह जगह बेहूदा ढंग से फूल-पत्ती की, काश्मीरी कला का अपमान करनेवाली सोज़नकारी की गई थी और काँच के गोल-गोल टुकड़े उसमें जड़े हुए थे। इस वास्कट की तहें उसने बड़ी अनिच्छा से खोलीं, मानो वह उसे किसी को दिखाना न चाहती हो। इसके

अलावा एक छुरा भी था। जो उसने पीर हुसैन के बहुत आश्वासन दिलाने पर अपने कपड़ों के भीतर से निकाल कर बाहर किया। छुरा वह क्यों रखे हैं; बहुत पूछने पर भी इस बात का उसने कोई जवाब न दिया। मुँह मोड़ कह दिया—'ऐसे ही।'

एक काश्मीरन, जिसने कभी अपने गाँव से बाहिर पैर नहीं रखा, अकेली लाहौर आती है। वह कहती है कि वह अपने आदमी को ढूंडने आई है परन्तु किसी भी आदमी या स्थान का पता वह नहीं जानती। एक मर्दानी वास्कट उसके पास है जिसे वह छिपाना चाहती है और है उसके पास एक छुरा। मामले के पेचीदा होने में सन्देह ही क्या था?

पीर हुसैन से मैंने कहा—'यह औरत चालाक मालूम पड़ती है और आश्चर्य नहीं यदि यह किसी भयानक मामले में फ़रार हो। इसका भेद लो!'

औरत को पीर हुसैन के सुपुर्द कर मैं दूसरे काग़ज़ देखने में लगा। बीच-बीच में उसकी तरफ़ ताककर देख लेता था। पीर हुसैन के बहुत देर तक समझाने के बाद इस स्त्रीने धीरे-धीरे अपनी बात कहनी शुरू की और बीच-बीच में आंसू पोंछने लगी। कुछ देर बाद वह खूब हुचक-हुचककर रोने लगी। पीर हुसैन उसे ढांडस बंधा रहा था ऐसी अवस्था में बीच में बाधा डालना मैंने उचित नहीं समझा। पीर हुसैन ने आकर मुझे मामला समझाया:—

'श्रीनगर से तीस-पैंतीस मील परे बैरी नाग के आस-पास इस औरत का घर है। वहाँ से सवा-दो-सौ मील पैदल चलकर वह 'जम्मू' पहुँची और स्टेशन-स्टेशन भटकती वह आखिर अपने पति की तलाश में पेशावर-एक्सप्रेस से लाहौर आ पहुँची है। पति का पता पूछने पर कहती है, वह लाहौर में है लेकिन ठिकाना नहीं जानती।'

'पता नहीं जानती तो क्या मर्द को अपने सिर में ढूँडेगी?'—मैंने कहा

'यातो वह अपने पति का पता जानती है या उसे ढूँडने नहीं आई।' पीर हुसैन की मार्फ़त अपनी सहानुभूति का निश्चय दिला डेढ़ घण्टे तक उससे पूछ-ताछ करने के बाद जो मैं समझ पाया उसका सार यह है,—

'तीस बरस होगये मेरा पति 'फज्जा' गाँव के दूसरे जवान मर्दों के साथ मजदूरी कर रुपया कमाने लाहौर आया था उसी समय मैंने कहा था—हमारे यहाँ जो-कुछ है पीर फ़क़ीर का दिया बहुत है। आठ-दस भैंसें हैं, दस-बारह 'घुमा' जमीन है, सेब, अखरोट और शहतूत के पेड़ हैं; मेहनत करने से इसी में सब-कुछ हो सकता है। मेरी सास—उसकी माँ—ने भी समझाया। मैं उस समय छोटी थी। मेरी उमर बीस साल से भी कम थी, उसने डाँट डपटकर चुप करा दिया और कहा—सात महीने में सेवों में फिर फूल आते आते वह लौट आयगा। लाहौर में चाँदी पैरों तले रुलती है। सब लोग जाते हैं मैं क्यों नहीं जाऊँगा? मैं रोती रही, वह चला गया। सास और मैं सब काम करती थीं। खेत में हल भी हमें चलाना पड़ता था। सास नाराज़ होती कहती—नकारे लड़के से लड़का न होना अच्छा।

'बरस गया, दो गये, तीन गये, मैं रोज रोती थी। बर्फ गलने पर परदेस गये लोग घर लौटते पर मेरा मर्द न लौटता। दो बरस और गुज़र गये, तब 'हावला' का मालिक 'रहमान' लाहौर से लौटा तो फज्जा की एक चिट्ठी लाया उसमें लिखा था—

'मुझे पुलिस ने झूठ मूठ पकड़ लिया है, थोड़ा रुपया भेज दो तो मैं लौट आऊँ। सास और मैं बहुत रोईं। दो भैंसें बेचकर हमने चालीस रुपये भेज दिये। सास से छिपाकर डाकखाने के मुंशी से मैंने एक चिट्ठी लिखा दी कि जल्दी आजा, माँ तेरी सख्त नाराज़ है और सख्त बीमार है। मैं रोती रहती हूँ। मुझे बहुत डर लगता है, तू जल्दी आजा। मुझे सास गाली देती है, कि मैंने तुझे भेज दिया, कि तू मुझसे लड़कर चला गया,

और अब अकेले काम नहीं होता। तेरी माँ थक गई है और तेरे बिना बड़ी तकलीफ़ है।'

"मैने पूछा—'रुपये की रसीद और चिट्ठी का जवाब आया ?'

उसने बताया—'रुपये की रसीद आई थी पर चिट्ठी का जवाब नहीं आया।'

मेरा विश्वास कर उसने उस मर्दानी बास्कट की जेब से तीन रसीदें निकालीं। तारीख़ के हिसाब से इनमें पहली पर सन १९०६ अक्टूबर, भाटी दरवाजा लाहौर के डाकखाने की मोहर थी। यह चालीस रुपये का मनीआर्डर था। पीछे एक अँगूठे का निशान था और उसकी बगल में उर्दू में लिखा था—'फज्जा'। गवाह के भी हस्ताक्षर थे। रसीदें दे उसने फिर क़िस्सा शुरू किया।

'साल पर साल गुजरने लगे, फज्जा नहीं लौटा। जो लोग लाहौर अमृतसर कमाई करने जाते थे उनसे कभी कभी फज्जा की खबर मिलती थी। कभी सुनती-पुलिस ने पकड़ लिया है; कभी सुनती-नौकर होगया है, कभी सुनती-दुकान कर अमीर होगया है। सास बीमार होकर मर गई। मैं अकेली रह गई।

'फारू' का व्याह मुझसे पीछे हुआ था। उसके दो पठोरे जैसे बेटे होगये और लड़की घर का काम काज करने को होगई। 'हावला' के भी दोनों लड़कियों के बच्चे होगये। 'मामचू' की घरवाली मर गई पर उसके भी एक तगड़ा लड़का और एक लड़की होगई।

'नौ बरस बाद लाहौर से एक आदमी खत लाया, लिखा था—मैं बीमार होगया हूँ खर्च पास नहीं, बड़ी तकलीफ है। खर्च किसी तरह भेज दो मैं आजाऊँगा। मैंने फिर एक भैंस बेची, दो अखरोट के पेड़ 'पागसू' को आधे दामों में दिये और उसे फिर चालीस रुपये डाक के मुंशी

से भिजवाये और खत भी लिखवा दिया कि अब मैं अकेली रह गई हूँ। तेरी माँ भी मर गई है। सारा गाँव मेरा दुश्मन हो रहा है। जिसके मर्द नहीं उसका क्या ठाँव ? कोई खेत काट ले जाता है, कोई अखरोट झाड़ ले जाता है। 'हावला' ने शहतूतों पर से सब कीड़े चुरा लिए हैं और देखो, सबके दो-दो तीन-तीन बच्चे हैं, घर आते जाते हैं, काम करते हैं, मेरा कोई नहीं। अब मुझे डर लगता है, मैं मान्दी हो जाऊँगी। मुझे तेरी कमाई नहीं चाहिए। तू बस आजा, हरगिज आजा।

अबके चिट्ठी आई कि तू घबरा मत मैं जरूर आऊँगा और लाहौर में वणज करूँगा। तुझे भी लाहौर ले आऊँगा यहाँ बड़ा आराम है। तू फिकर मत करना तुझे गहने भी बनवा दूँगा। मैंने फिर भी लिखवाया कि तू आजा, घर में बसना ठीक है। पराई जगह के पैर नहीं होते। बहुत नुकसान खेती और जानवरों का होगया पर तू आयगा तो सब हो जायेगा। मैं अभी जवान हूँ, अभी हाथ-पैर चलते हैं, तेरे लड़के होंगे तो सब होगा। कोई नहीं आया, फिर खत भी नहीं आया।

'मैं कई दफ़े मांदी पड़ गई। घर में कोई नहीं था तब मामचू पानी भर कर दे जाता और भैसों का दूध भी निकालकर ले जाता। और भी जब पांच छः बरस हो गये तो मामचू ने कहा—'तू बढ़ी हो गई, जवानी में हाथ पैर चलते थे, काम काज कर लेती थी। अब पांच सात बरस की और बात है फिर तो हाड़ बैठ जायँगे मेरे साथ निकाह करले। मेरा लड़का है दोनों को कमाकर खिलायेगा। तेरे भी बालबच्चा हो जायगा तो अच्छा है नहीं तो क्या करेगी ?' मैं रोने लगी।

—वह इस समय भी रो रही थी।

मैंने कहा—'फज्जा मेरा मर्द है वह आयगा तभी मेरा घर बसेगा अब वह आजायगा।'

'तीन बरस बाद फिर फज्जे का खत आया कि किसी महाजन का देना नही दिया, कैद होगया है। तीस रुपये भेजदो तुरन्त आजायगा। अबकी मैंने एक बुमा जमीन पर करज लेकर डाकखाने से रुपया भिजवाया और लिखाया, कि तेरा घर है, तेरे बिना बरबाद हो रहा है और कि तमाम उमर परदेस में बिताई अब तो आकर घर करो कि और सब लोगों के जवान लड़के घर कमा रहे हैं और मैं बूढ़ी मर रही हूँ।

'कोई नहीं आया। खत भी नहीं आया। मैंने सुना कि कि उसने और व्याह कर लिया है। मैंने उसे खत लिखाया—तूने बुरा किया खैर तूनें अच्छा किया। तू आजा और उसको भी ले आ। मैं दोनों की खिदमत करूँगी। रोटी का टुकड़ा दो वक्त मुझे देना, तू हरगिज आजा।

'कोई नहीं आया। मैं थक गई। काम चौपायों और खेती का अब नहीं होता। मेरा क्या है, मैं खतम होगई। जिसके लिए इतना सहा उसे लेने आई हूँ। उसे ढूँडनेकर पूछूँगी कि बता कि तू घर क्यों नहीं आया? घर को बरबाद किया अब तू चल और कुछ नहीं हमारे बाल बच्चे न सही हम चार दिन साथ रहेंगे। जो पहले पूरा होगा दूसरा उसको मिट्टी देदेगा।'

वह फ़फ़क फ़फ़ककर रोने लगी। मैं उसके जीवन के प्रति भाग्य के विद्रूप की बात सोचता रहा था। उससे पूछा—'क्या यह वास्कट फज्जा की है?'

उसने सिर हिला कर हामी भरी। इतनी प्रतारणा के बाद भी वह उस वास्कट को साथ ही लिये थी। शायद उमंग से अपने दूहले को सजा कर साथ ले जाना चाहती थी।

मैंने पूछा—'यह छुरा किसका है?'

आंखें पोंछ कर उसने कहा—'मेरा।'

मेरे यह पूछने पर कि छुरे का वह क्या करेगी ? वह चुप होगई।

कुछ देर ठहर कर पीर हुसैन ने सान्त्वना के स्वर में प्रश्न को दोहराया।

उसने बिगड़ कर जवाब दिया—'उसने मेरी तमाम उमर बरबाद करदी मैंने उसके लिए सब कुछ किया, उसके लिए मैं बाँझ बनी, अब वह मेरे साथ नहीं जायगा तो मैं उसे कतल कर दूँगी।'

सुनकर मैं काँप गया परन्तु क्रोध या घृणा उसके प्रति न कर सका। पुलिस स्टेशन में बैठकर जो व्यक्ति खून करने का इरादा प्रकट करे……

पीर हुसैन ने उसका वह छुरा उठा सन्दूक में बन्द कर दिया।

× × ×

फज्जा की तलाश शुरू हुई। शहर के दस नम्बरिया बदमाशों का का रजिस्टर देखा गया। उसमें अनेक 'फज्जा' अनेक रूप में मौजू थे। फज्जा, फैजू, फजलू, फजले खां। इनमें रफ़िया का फज्जा कौन है ? यह जानने के लिए उससे उसके मर्द का हुलिया पूछा। उसने बताया—

'देखने में बड़ा अच्छा है, जवान है, भली-भली दाढ़ी-मूंछ है एक चोट का निशान दायें नथने पर है।'

रजिस्टर से मालूम हुआ, वह हीरा मण्डीवाला फज्जा है। खोज करने पर मालूम हुआ, वह जमानत न दे सकने के कारण दफ़ा १०९ में लाहौर सेन्ट्रेल जेल में सज़ा काट रहा है। यह बात रफ़िया से कहने की नहीं थी।

शाह साहिब से मिल, सिफ़ारिश करा, मियां याक़ूब हुसैन से फज्जा का मुचलका दाखिल करवा दिया। फज्जा को अलग बुला डांट फटकार बता घर जाकर आराम से रहने के लिये तैयार कर लिया।

जब उसे लाकर रफिया के सामने खड़ा किया वे दोनों एक दूसरे को पहचान न सके।

सम्भवत: रफिया तेइस चौबीस बरस के हट्टे-कट्टे जवान की बात सोच रही थी। पीर हुसैन ने जब दोनों का परिचय कराया तो कितनी ही देर तक रफिया बज्राहत की भांति दांतों तले उंगली दबाए फज्जा की तरफ देखती रही, मुख से उसके शब्द न निकल सका।

फज्जा के सफेद बाल, झुरियों से भरे चेहरे, निस्तेज आँखें और दांत हीन मुख को देख वह स्वीकार न कर सकी कि वही उसका फज्जा है जिसके लिये उसने आयु भर तपस्या की है।

एक बहुत गहरी सांस ले, मुख से एक भी शब्द न बोल सिर हिला कर वह एक ओर को हट गई और चादर में मुख छिपा न जाने वह कितनी देर तक रोती रही।

किसी को उससे कुछ कहने का साहस न हुआ। सांझ को पीर हुसैन ने उसे समझाया कि, फज्जा को लेकर घर चली जा।

उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं, फुंकार कर उसने कहा—'इस धोखाबाज, दग़ाबाज, जालिम ने मुझे मिट्टी कर दिया। मैं उसका मुंह नहीं देखूंगी।'

वह उस वास्कट को वहीं छोड़, अपनी चादर उठा स्टेशन की ओर चल दी। उस समय कुछ कहने का अवसर न था, परन्तु ख़याल आया—'यह है तीस बरस की प्रेम साधना का सार।'

पहाड़ की स्मृति

अब तो मण्डी में रेल, बिजली और मोटर सभी कुछ हो गया है, पर एक जमाना था, जब यह सब कुछ नहीं था। हमीरपुर से रवालसर के रास्ते लोग मण्डी जाया करते थे। उस समय व्यापार या तो खच्चरों द्वारा होता था, या फिर आदमी की पीठ पर चलता था। उन दिनों मैं मण्डी होकर कुल्लू गया था।

शहर मण्डी से कुछ इधर ही एक अधेड़ उमर की पहाड़िन को एक बाँस की टोकरी में खुरबानियाँ लिए हुए मैंने सड़क के किनारे बैठे देखा। पहाड़ी लोग अक्सर इस तरह कुछ फल वल लेकर सड़क के किनारे बैठ जाते हैं और राह चलतों के हाथ पैसे-पैसे दो-दो पैसे का सौदा बेचते रहते हैं। खुरबानियाँ बहुत बड़ी-बड़ी और बढ़िया थीं।

मेरे कुछ पूछने से पहले ही उस पहाड़िन ने बिगड़ी हुई पंजाबी में सवाल किया—'क्या तुम लाहौर के रहनेवाले हो ?'

मेरी पोशाक देखकर ही शायद उसे यह खयाल गुजरा कि मैं लाहौर का रहनेवाला हूँ।

सोचा—क्या यह मुझे पहचानती है ? लेकिन कैसे ? उत्तर दिया—'हाँ, मैं लाहौर का रहनेवाला हूँ।'

उसकी आँखें क़द्रे खुशी से चमक उठीं, उसने पूछा—'तुम परसराम को जानते हो ?'

विस्मय से मैंने पूछा—'परसराम ? कौन परसराम ?'

कुछ व्यग्र होकर उसने उत्तर दिया—'परसराम ठेकेदार !'

कुछ मतलब न समझकर मैंने फिर पूछा—'कौन परसराम ठेकेदार ?'

मैं जिस ओर से चलकर आ रहा था, उसी ओर हाथ से संकेतकर उसने कहा—'वह दोनों पुल जिसने बनवाए थे ।'

बात मेरी समझ में न आई । मैंने उत्तर दिया—'मैं परसराम को नहीं जानता । होगा कोई, क्यों ?'

उदास होकर उसने कहा—'तुम लाहौर के रहनेवाले हो, और उसे नहीं पहचानते ! वह भी तो लाहौर का रहनेवाला है । परसराम ठैकेदार है न ?'

पहाड़िन की अधीरता से कुछ द्रवित हो मैंने पूछा—'किस गली, किस मुहल्ले का रहनेवाला है वह ?'

बहुत चिन्तित भाव से एक हाथ गाल पर रखकर उसने धीरे-धीरे कहा—'गली, मुहल्ला ? गली, मुहल्ला नहीं, वह लाहौर का रहनेवाला है । तुम तो लाहौर के रहनेवाले हो, उसे नहीं पहजानते ?'

उस औरत की नादानी पर मैं हँस न सका । मैंने उसे समझाने की कोशिश की कि लाहौर बहुत बड़ा शहर है । अधिक नहीं तो दो-ढाई लाख आदमी लाहौर में बसते होंगे । वहाँ एक-एक मुहल्ले में इतने आदमी हैं कि एक दूसरे को नहीं पहचान सकते । मैं हीरा मण्डी में रहता हूँ । यदि परसराम ठेकेदार मजंग में रहता होगा, तो वह मुझ से साढ़े तीन मील दूर रहता है, हालाँकि वह भी लाहौर में रहता है और मैं भी लाहौर में ही रहता हूँ और हम लोगों के बीच दूसरे लाखों आदमी रहते हैं ।'

बात औरत की समझ में नहीं आई । उसकी आँखों की प्रसन्नता काफ़ूर हो गई । गाल पर हाथ रखकर धीमी आवाज में उसने कहा—'वह लाहौर का रहनेवाला है, लम्बा-लम्बा, गोरा-गोरा, प्यारी-प्यारी

आँखें हैं, तुम से कुछ जवान है, भूरा-भूरा कोट पहनता है, रेशमी साफा बाँधता है, वह लाहौर का रहनेवाला है।'

मैंने दुखित हो उत्तर दिया—'नहीं, मैं नहीं पहचानता।'

उसकी टोकरी के पास उँकड़ू बैठकर खुरबानियाँ चुन-चुनकर मैं अपने रूमाल में रखने लगा। सहानुभूति के तौर पर मैंने पूछा—'क्यों, तुम्हें उससे कुछ काम है क्या ?'

गहरी साँस खींचकर उसने कहा—'परसराम यहाँ पुल बनवाता था, पाँच बरस हो गये—तब वह यहाँ था—वह जाने लगा तो मैंने कहा—मत जा। उसने कहा, मैं बहुत जल्दी थोड़े ही दिन में लौट आऊँगा। वह आया ही नहीं······लाहौर तो बहुत दूर है न ?'

मैंने उत्तर दिया—'हाँ, बहुत दूर है।'

उसकी आँखों में नमी आ गई। उसने गर्दन झुकाकर कहा—'न-जाने वह क्यों नहीं आया······न-जाने कब आएगा······पाँच बरस हो गए, आया नहीं !'—वह चुप हो गई।

कुछ देर बाद गर्दन झुकाए ही वह बोली—'उसकी राह देखती रहती हूँ, इसीलिए यहाँ सड़क पर भी आ बैठती हूँ। मेरा बहुत-सा काम हर्ज होता है; लेकिन दिल घबराता है, तो यहाँ आ बैठती हूँ। दो और आदमी लाहौर से आए थे पर वह नहीं आया। पाँच बरह हो गए !' वह चुप हो गई।

एक छोटी-सी लड़की—प्रायः पाँच बरस की—एक ओर से दौड़ती हुई आई। मुझ अपरिचित को देख वह सहम गई। फिर मुझे अलक्ष कर माँ के आँचल में मुँह छिपा वह उसके गले से लिपट गई।

मैंने पूछा—'यह तुम्हारी लड़की है ?'

सिर झुकाकर उसने हामी भरी। लड़की के सिर पर हाथ फेरते

हुए उसने कहा—'यह भी पाँच बरस की होगई। इसने बाप को अभी तक नहीं देखा। देखे तो पहचान भी न पाये।'

उन दोनों की ओर देखते हुए मनमें विचार अया—कवि लोग कहते हैं, 'विरह प्रेम का जीवन है और मिलन अन्त', क्या यह अपने प्रेम का अन्त कर देना चाहती है? यों यह प्रेम क्या सदा बना रहेगा? फिर ख़याल आया—यह स्त्री निर्लज्ज है? क्या इसका प्रेम त्याग या तपस्या का उदाहरण है?

पूछा—'कितने पैसे?'

बोली—'नहीं, नहीं, पैसे क्या; तुम लाहौर के रहनेवाले हो, तुमसे पैसे क्या?' और दोनों हाथों की अंजली से जितनी खुरबानियाँ रूमाल में आ सकती थीं, उसने भर दीं।

समझ गया औरत पैसे न लेगी। उसकी वह उदास सूरत मन में चुभ-सी रही थी; परन्तु उठकर जाते भी क्रूरता-सी अनुभव होती थी। असबाब का खच्चर दूर निकल गया होगा, इस ख़याल से उठना ही पड़ा। एक अठन्नी निकाल आत्मीयता के भाव से मैंने बच्चे हाथ में देनी चाही। औरत ने इनकार किया; परन्तु मेरा भाव समझकर उसने बेटी को अनुमति दे दी।

उन्हें छोड़ मैं बस्ती की एक धर्मशाला में जा टिका। कल्पना में वही सड़क के किनारे प्रतीक्षा में बैठी हुई पहाड़िन दिखाई देती रही। मानो वहीं प्रतीक्षा में बैठ बैठकर वह अपनी आयु शेष कर देगी।

सुबह धूप निकलने पर मैं घूमने निकला। पैर स्वयं उसी सड़क की ओर चल दिये। चट्टानों की आड़ में मोड़ घूमकर देखा—वह औरत अपने खेतों में निराई कर रही है। आने-जानेवाले की आहट पा एक नजर सड़क पर डाल लेती है। मालूम पड़ता था, उसके व्यथा और श्रम से

क्लान्त शरीर को आशा की एक मन्द लौ ने जीवित रखा है। यह मन्द लौ परसराम के लौट आने की आशा है।

मुझे देख उसके चेहरे पर एक फीकी-सी मुस्कराहट फिर आई। हाथ की कुदाली एक तरफ़ डालकर बोली—'क्या लाहौर लौट रहे हो ?

उत्तर दिया—'नहीं ज़रा ऐसे ही घूमने चला आया।'

मैं उसके खेत में चला गया। पूछा—'परसराम यहाँ कितने दिन रहा था ?'

पहाड़िन ने जवाब दिया—'आठ महीने। कहता था—जल्दी ही लौट आऊँगा, अभीतक नहीं आया ? जाने कब आयेगा ? लड़की भी इतनी बड़ी हो गई !'

मैंने पूछा—'तो तुम उसके साथ लाहौर क्यों नहीं चली गईं ?'

उसने गाल पर हाथ रखते हुए कहा—'हाँ मैं नहीं गई। परसराम ने तो कहा था, तू चल। पर मैं नहीं गई। देखो मैं कैसे जाती ? यहाँ का सब कैसे छोड़ जाती ? वह सामने खुरबानियों के पेड़ हैं, वे नासपातियाँ हैं, सेब हैं, दो अखरोट हैं। मैं यहाँ से कभी कहीं नहीं गई। एक दफ़े जब मैं छोटी थी, मेरी मौसी मुझे अपने गाँव—वहाँ नीचे ले गई थी। उसका घर बहुत दूर है। बीस कोस होगा। वहाँ बहुत वैसा-वैसा है। न यह पहाड़, न यह ब्यास नदी की आवाज़, न ऐसे पेड़, रूखा-रूखा मालूम होता है। वहाँ मुझे बुख़ार आगया था, तब मेरा फूफ़ा मुझे पीठ पर लादकर यहाँ लाया। यहाँ आते ही मैं चंगी होई। मैं कभी कहीं नहीं गई। लाहौर तो बहुत दूर है, वहाँ शायद लोग बीमार होजाते हैं। परसराम के लिए मुझे बहुत डर लगता है। क्या जाने, क्या हाल हो ? हमारे यहाँ बीमार कभी ही कोई होता है। हो भी जाय तो हर्दू जुलाहा झाड़-फूँक देता है। लाहौर में क्या कोई अच्छा झाड़नेवाला है ?'

मैंने उत्तर दिया—'हाँ, है क्यों नहीं, बहुत-से हैं ।'

सन्तोष से सिर हिला कर उसने कहा—'अच्छा ।'

सकुचाते-सकुचाते मैंने पूछा—'परसराम के आने से पहले तुम्हारा ब्याह नहीं हुआ था ?'

उसने कहा—'ब्याह तो हुआ था, पर बहुत पहले । मुझे ब्याह के यहाँ से मेरा आदमी तक मुझे ले गया था । वहाँ मुझे अच्छा नहीं लगा । मैं बीमार हो गई । वहाँ मेरी सौत मुझे मारती थी । मैं यहीं लौट आई । मेरा आदमी कभी-कभी यहां आकर रहता था । ब्याह के तीन साल बाद वह गुजर गया । मैं माँ के पास ही रही । मैंने परसराम से कहा था—यहाँ सब कुछ है तू कहीं मत जा । कहता था—मैं जल्दी आ जाऊँगा । पाँच बरस हो गए, वह अभी तक नहीं आया । देखो कब आये ? अब तो दो बरस से माँ भी नहीं है ।'

चौथे दिन तीसरे पहर मैं फिर उधर से गुज़रा । वह सिर झुकाए अपने खेत में काम कर रही थी । कुछ गुनगुनाती जाती थी । मैं क्षणभर खड़ा देखता रहा । शायद वह विरह का गीत गुनगुना रही थी, या पिछले दिनों की याद कर रही थी । उसके ध्यान में विघ्न डालना मैंनें उचित न समझा, लौट आया ।

मण्डी में मैं सप्ताह भर ठहरा । कुल्लू के लिए चलने से पहले मैं उसे फिर एक दफ़े देखने के लिए गया । वह अपने खेत में अनमनी-सी निराई कर रही थी । उसकी लड़की खेत से निकाले हुए घास को दौड़-दौड़कर बाहर फेंक आती थी ।

मैंने कहा—'आज जा रहा हूँ ।'

उसने उत्सुकता से पूछा—'लाहौर ?'

मैंने कहा—'हाँ, कुल्लू जा रहा हूँ, वहाँ से लाहौर लौट जाऊँगा ।'

बड़ी आजिजी में उसने कहा—'परसराम से मेरा सन्देसा जरूर कहना। कहना—दिनभर सड़क ताका करती हूँ; मैं बड़ी इन्तजार में हूँ, पाँच बरस हो गए, अब जरूर लौट आ। तेरी लड़की तुझे पुकारती रहती है। कहोगे न?'

मैंने कहा—'ज़रूर कहूँगा।'

अपनी बेटी को प्यारकर उसने कहा--'देख, बाबू तेरे बाप के पास जा रहे हैं। बाबू को सलाम कर। बाबू तेरे बाप को भेज देंगे।'

'अच्छा'—कहकर मैं लौट पड़ा। फिर लौटकर मैं उधर न देख सका परन्तु ऐसा जान पड़ता था, मेरी गर्दन की पीठ पर उसकी आँखें गड़ी जा रही हैं। मनमें एक बेचैनी-सी अनुभव हो रही थी। कह नहीं सकता—परसराम के प्रति क्रोध था, या पहाड़िन के प्रति करुणा, या ईर्ष्या?

पीर का मज़ार !

पंजाब के उत्तर-पश्चिम में, जहाँ लाल रंग समाप्त होकर, बेरंग प्रदेश आरम्भ हो जाते हैं, वहीं मसूदों के इलाके में भूरे, सूखे, नंगे, उत्तुंग बीहड़ पर्वतों में खेनाजैल ग्राम में जहानगुल का घर था। जहानगुल आज संसार में नहीं है परन्तु उसकी यशःकीर्ति की शुभ्र ध्वजा उन भयंकर पर्वत चट्टानों में, अब भी स्थायी रूप से खड़ी है और खड़ी रहेगी जबतक खेनाजैल के इलाके में दीन पाक का क़दम कायम रहेगा !

जहानगुल कौन था ? क्योंकर वह अपने यश की धवल ध्वजा अमर कर गया, यही कहने जा रहे हैं। जहान मसूद पठान था और वही करता था जो मसूद पठान करते हैं। कहने को पाँच बीघे ज़मीन की खेती और दस बीस भेड़ों का एक गोल, लेकिन दरअसल वही वंश क्रमागत पेशा—मुसाफिर को लूटना और वंश-शत्रु से बदला लेना।

वह बचपन से ही होनहार था, बाप छोटी उमर में अनाथ कर गया था पर उससे क्या ? बाप का साया सिर से क्या हटा, मानो उसकी जवांमर्दी बेटे के सीने में समा गई। छोटी उमर से ही बाप की तोड़ेदार बंदूक लेकर वह लूट की टोली में शामिल होने लगा।

पिता जिस ऊंट को लेकर बन्नू से गज़नी तक भाड़े पर माल ढोता था, उसे जहान ने बेचकर जब मार्टिनी हेनरी राइफल खरीद ली तो गाँव-भर समझ गया कि दीन गुल का बेटा बाप का नाम रोशन करेगा। मार्टिनीहेनरी का स्वामी और अचूक लक्ष बेधी बन वह जेनाखेल की लूट की टोली का मनोनीत नेता बन गया।

जहान गुल की यह सफलता और सम्मान देख उसकी मां की छाती फूल उठती। वह पाँच वक्त नमाज़ पढ़ती थी, अब तहज्जुद की नमाज़ और क़ायदे से पढ़ने लगी। हरदम खुदा से यही दुआ मांगती—'या परवर दिगार मेरे एकलौते बेटे को दुश्मनों की नजर से बचाना। मेरे बुढ़ापे की लकड़ी का बल बीका न हो।'

लोग बुढ़िया के समीप बैठ उसके बेटे की बहादुरी का बखान करते—कैसे उसके अचूक निशाने से अमुक गांव के अफ़रीदी का सिर खरबूज़े की तरह उड़ गया, कैसे बन्नू पुलिस के सिपाही को छुरे के एक ही वार से उसने पार कर दिया। यह सब सुन बुढ़िया का कलेजा बल्लियों उछलने लगता, उसकी झिम-झिमी आँखों से उल्लास के आँसू झड़ने लगते। आकाश की ओर अंजली उठाकर वह एक ही दुआ मांगती—'मेरे बेटे की बंदूक का निशाना कभी ख़ता न हो, दुश्मन का निशाना हमेशा खता जाय।'

जहान मुसाफिरों को लूटकर केवल पाप ही संचय करता हो सो बात नहीं थी। उसी का साहस था जो आज खेल में दुरुह, विरूप चट्टानों के ऊपर श्वेत सुन्दर मसजिद नज़र आ रही है। यह मसजिद जहानगुल की कीर्ति का अमर स्तम्भ है। केवल काफ़िरों को लूटकर ही, बिना किसी सहायता के उसने इस मसजिद को पूरा किया था। इस मसजिद के लिये उसने क्या नहीं किया; जान पर खेल बन्नू तक धावे मारे। पेशावर से कारीगर लाया। स्वयं जहान-मिट्टी के कच्चे मकान में ही रहा, परन्तु 'खुदा का घर' चूनागच्ची और पच्चीकारी से चमकने लगी।

परन्तु भगवान तो सदा अपने भक्तों को कष्ट ही देते हैं। जहान बीमार पड़ गया और बीमारी ऐसी कि जिसका सिर पैर कुछ समझ न आता था। बड़े-बड़े हकीम आये तसखीशें हुई। जुलाब पर जुलाब दिये गये पर कुछ न बना। वही खूब जोर से जाड़ा लगकर बुखार चढ़ आता।

हकीमों ने बताया जहान के बदन में दो जिन्नों ने घर कर लिया है। एक है सर्द जिन्न और दूसरा है गर्म जिन। एक सरदी लगाता है तो दूसरा बदन को गरम कर देता है। अगर सर्द जिन को भगाने के लिये बदन को गरमी दी जाती है तो गरम जिन्न ताकत पकड़ता है और अगर सर्दी पहुँचाकर गरम जिन को दबाया जाता है तो सर्द जिन्न जोर पकड़ता है।

एक आलिम हकीम ने बर्फ़ के समान सफ़ेद दाढ़ी पर हाथ फेर कर बहुत धीमी आवज़ में कहा—जिससे बीमार न सुन सके—'जब दो जिन्न बदन में दखल कर लेते हैं तब बीमार का बचना नामुमकिन हो जाता है, इस वक्त अगर तीसरा जिन्न उन दोनों को मार कर भगा सके, तभी कुछ उम्मीद हो सकती है। बाक़ी पीर की दुआ से सब कुछ है।'

हकीम साहब ने फर्माया, उनके गाँव में जो बेरी वाले पीर हैं अगर उनकी मनौती कर, बन्नू के फिरंगी हस्पताल की कड़वी दवा दी जाय तो फ़ायदे की पूरी उम्मीद हो सकती है। हकीम साहब ने क़िस्सा कह कर बताया—बेरी वाले पीर जब जियारत के लिये अजमेर शरीफ़ गये थे फिरंगियों ने उनकी बहुत ख़िदमत की थी। तभी से पीर सैय्यद ने फिरंगियों के कड़वे पानी को दुआ देदी—जो पियेगा दो जिन्न की बीमारी में शफ़ा पायेगा। लेकिन हर हालत में तावीज़ को बाज़ू पर बाँधे रहना ज़रूरी है।

बेटे की बांह पर तावीज़ बांधकर, जहानगुल की मां गिरती पड़ती चट्टानों पर रेंग-रेंग कर बेरी वाले पीर की दरगाह पर जा सूखी बेरी की टहनी में बँधी असंख्य गांठों में एक और मनौती की गाँठ बांध आई और फिर बन्नू के फिरंगी हस्पताल से कड़वा पानी लाकर बेटे को पिलाया।

बेरी वाले की दुआ से जहानगुल के बदन के भीतर के दोनों जिन्न घबराने लगा। लोगों ने समझ लिया, जिन्न भाग गये। जिन्न तो भाग गये

परन्तु जाते-जाते जहान को ऐसा धक्का दे गये कि, उसका सिर हरदम धुमाने लगा और कानों में सांय-सांय होने लगी।

अनुभवी लोगों ने समझाया, इसका इलाज यही है कि जहान बेरीवाले पीर की ज़ियारत करे। शरीर में कुछ शक्ति आते ही जहान पीठ पर मार्टिन हेनरी लटका कर चार साथियों सहित ज़ियारत के लिये चल दिया।

किस श्रद्धा से जहानगुल ज़ियारत के लिये चला था? परन्तु कानाखेल में जा उसका जो अपमान हुआ उससे उसका सम्पूर्ण रक्त जल गया। कुछ वर्ष हुए ईद के मौक़े पर कानाखेल के किसी व्यक्ति को नमाज़ पढ़ने, खेनाजेल की मसजिद में जाने पर, खेनाजेल के किसी अभद्र व्यक्ति ने ताना मारा था—'इतना बड़ा गांव का नाम और एक मसजिद तक नहीं बना सकते।' उस ताने के बदले में जहान को यह अपमान सहना पड़ा।

कानाखेल पहुँचने पर उससे कहा गया—'शरम नहीं आती! अपनी मसजिद में जाओ, ख़बरदार अगर हमारे पीर की दरगाह पर कदम रखा!'

जहान की आंखों में खून चढ़ गया। तबियत में आया प्यारी मार्टिनी के सुन्दर मुख से इस अपमान का तुरन्त उत्तर दे, परन्तु समझदार आदमी था, सोचकर रह गया। जानता था, पराई सीमा में लड़ाई मोल लेकर उसकी बोटी भी घर नहीं पहुँचेगी।

उसने गरज कर कहा—'पीर की दरगाह का इतना अभिमान! जो तुम्हारे पीर की दरगाह की तरफ़ मुँह करे, उसपर लानत! सौ लानत!! उस पर शरम!!!'

जहान कानाखेल से लौट पड़ा परन्तु जेना खेल न आकर वह बंगाज़ई की ओर चला। बंगाज़ई के सैयद वंश की बड़ी मानता है। वह खुद 'रसूले अल्लाह वल्लेसल्लम' के नज़दीकी खानदानों में से है। इस वंश के

अमीनशाह बड़े पहुँचे हुये पीर थे। बंगाजई पहुँच जहान पीर शाह के हुज़ूर में हाजिर हुआ और उनसे अत्यंत अनुग्रह पूर्वक खेनाजेल की भूमि को चर्ण स्पर्श से पवित्र करने की प्रार्थना की और उन्हें साथ ले खेनाजेल पहुँचा।

खेनाजेल में पीर सैयद के आगत-स्वागत की सीमा न थी। मौलूद हुए, उर्स भी हुए। पास-पड़ोस के बीसियों गाँवों से लोग ज़ियारत के लिए इकट्ठे हुए। कई रोज़ तक हलवे, मांडे, गोश्त-नान से जहान ने पीर साहिब की तवाज़ह की। पीर साहिब के लौटने का दिन आया, लोगों ने भेंटें चढ़ाई, पीर साहिब ने दुआएं दीं।

जहान श्रद्धा-भक्ति से पीर साहिब को घोड़े पर सवार करा उन्हें वापिस करने चला। गांव से आधा मील आकर उसने पीर साहिब से विदा ली। पीर सैयद अपनी भेंट के बोझ को लाद आगे बढ़े, और जहान एक चट्टान पर बैठकर प्रतिक्षा करने लगा।

पीर सैयद ने ज्योंही जहान के गाँव की सीमा से बाहिर कदम रखा, जहान ने आसमान की तरफ़ देखकर कहा—'या अल्लाह बख़्श!' और अपनी मार्टिनी-हेनरी को उठाकर कन्धे के बराबर सीधा किया पल भर में आस-पास की पहाड़ियाँ बन्दूक के गर्जन से गूँज थीं और पीर सैयद औंधे मुंह जमीन पर लोट गये।

बड़े यत्न और आदर से जहान पीर साहिब की लाश को उठा लाया। तमाम भेंटें ग़रीबों को ख़ैरात करदीं और एक ऊँची पहाड़ी पर बेरियों की छाया में पीर सैयद की शानदार क़ब्र बनादी गई। दिन रात दिया जलने लगा।

तब सुस्थ होकर जहानगुल ने कहा—'अब दुनिया देखेगी कि कानाखेल के पीर की मानता बड़ी है या खेनाजेल के पीर की ? और

शरम है उसपर जो खेनाजेल से कानाखेल जाय ! और लानत है खेना-जेल वालों पर अगर कानाखेल वालों को अपनी दरगाह पर आने दें ।

खेनाजेल वालों ने कलाम पाक की कसम खाकर कहा—'वे जान दे देंगे पर अपने नेता की शुभ्र कीर्ति पर धब्बा न लगने देंगे ।'

दुखी-दुखी !

लाहौर के तिब्बी बाजार, बनारस की दालमण्डी और दिल्ली के चावड़ी बाजार में से गुज़रते समय शरम से तुम्हारा सिर झुक जाता है, तुम घृणा से नाक सिकोड़ लेते हो। मैं ऐसा नहीं करता क्यों ? सुनो :—

तुम मानोगे नहीं लेकिन सच कहता हूँ, मुँह में अनाज का दाना डाले पूरे चार रोज़ हो गये थे। क़दम-क़दम पर पैर लड़-खड़ाते थे और आँखों के सामने अँधेरा छा जाता था। पहले तो सिर घूमने लगा और फिर मानों दरद से फटने-सा लगा। दिल में तिलमलाहट होने लगी, बड़े ज़ोर से उबकाई आती थी, जैसे कै हो जायगी। पर पेट में रखा क्या था ? केवल पानी। पेट की ज्वाला को बुझाने के लिए कभी इस प्याऊ से और कभी उस प्याऊ से मैं पानी लेता था वही निकल जाता था। गलियों में दोनों हाथों से सिर थाम-थामकर मैं नालियों के किनारे कै करने बैठ जाता था। भले आदमी मुंह फेरकर निकल जाते थे। कोई टोक देता, क्या हुआ रे ! नाजुक मिजाज रूमाल मुँह पर रख कर, एक ओर थूँककर चले जाते।

पहली रात तो स्टेशन के सामने जो बाग़ है क्या कहते हैं उसे, हाँ; विक्टोरिया गार्डन वहीं एक बेंचे पर लेट कर गुज़ार दी। दूसरी रात जमुना किनारे बाँध पर जा लेटा। तीसरी रात मन बहुत ही बेचैन था, पैरों में कहीं जाने की शक्ति न थी सिर में दरद अधिक था उस समय

न जाने क्या ढूँढ़ता खोजता, किस अन्धी आशा में, किस प्रयोजन से, जामा मसजिद के समीप से चला रहा था। उस समय परेड में सड़क के किनारे की पटरी पर कुछ आदमी लेटने की जगह ठीक कर थे। जगह की किसी प्रकार की कमी न रहने पर भी जगह के लिए झगड़ा चल रहा था। एक फ़कीर इकतारा बजाकर कुछ गा रहा था। वहाँ पहुँचकर मुझे अनुभव हुआ मानों एक ठिकाने पहुँच गया हूँ। पहिले दो दिन की तरह, लज्जा के कारण एकान्त ढूँढ़ने की इच्छा न हुई। घृणा के कारण उन लोगों से भाग जाने की भी इच्छा नहीं हुई। उन्हीं लोगों की संगत में मैं भी एक ओर लेट गया। ओफ़ इंसान क्यों—कैसे बदल जाता है ?

सोचने लगा, अब क्या होगा ? घर वालों को खबर कैसे होगी ? लेकिन इस बात को तो मैं तीन दिन और दो रात से सोच रहा था। सोचते-सोचते थक गया तो समीप लेटे हुए आदमियों की बात चीत सुनने लगा।

चौथे दिन सोचा मिथ्या लज्जा में क्या रखा है, जैसे सैकड़ों आदमी हाथ पसार कर माँग लेते हैं, उसी तरह मैं भी माँग लूँगा। जब मेरा सब कुछ भाग्य ने छीन लिया तो भाग्य की ही इच्छा पूरी हो। परन्तु किसी भद्र पुरुष के समीप पहुँचने पर जिह्वा जड़ हो जाती। सोचने लगता—क्या यह मेरी बात सुनेगा ?

बचपन से माँ के अतिरिक्त कभी किसी से कुछ माँगा नहीं। माँ ने सदा यही सिखाया था—बेटा कभी कोई कुछ दे तो भी नहीं लेना। उस समय मालूम हुआ यह केवल भरे पेट का अभिमान था।

स्टेशन के समीप बार-बार जाता। मालूम होता था स्टेशन मेरे घर का दरवाज़ा है जो पैसे की चाबी से खुल सकता है परन्तु वह चाबी मेरे पास नहीं थी—खो गई थी। इसी से मैं बेघरबार था—निराश्रय था।

स्टेशन से फ़तहपुरी पहुँचा। फ़तेहपुरी में साँझ को कैसी भीड़ होती है सो जानते ही हो। जन प्रवाह में बह रहा था। न जाने कौन प्रेरणा कौन शक्ति दिन भर में कई दफे मुझे पूरी पराठे की दूकानों के सामने ले जाती थी। अनेक बार सतृष्ण नेत्रों से मैं उन पदार्थों को देखता था, भीषण परिमाण में उन्हें निगल जाने की इच्छा होती थी—यहाँ तक कि सड़क पर बैठे क़बाब फ़रोश के सामान को—जिसके समीप से गुजरते समय नाक पर रुमाल रख लेना पड़ता है, मैं लोलुप दृष्टि से देखने लगता था। हलवाई की दूकान पर से पूरी खाकर जो लोग पत्ते फेंक देते थे, उनमें भोजन पदार्थ का कुछ अँश देख हाथ उस ओर जाना चाहते थे परन्तु अभी शरीर पर कपड़े बाक़ी थे वही, उनका ख़याल ही उन्हें रोक देता था—आत्मा का अभिमान उड़ा गया था लेकिन कपड़ों का बाकी था।

भूख बुरी चीज़ है। उससे हाथी और शेर भी सूत हो जाते हैं। मनुष्य की क्या बिसात। एक गली में देखा, एक धर्म—प्राण हिन्दू नारी सांढ को रोट खिला रही है। आंखों में आँसू आ गये—दांतों से ओंठ काट बड़ी मुश्किल से उन्हे रोका।

कह रहा हूँ, बिना किसी प्रयोजन के जिस ओर पैर उठे उसी ओर दिवारों का सहारा ले लेकर चला जा रहा था। आ पहुँचा हौज़ काज़ी! होश हवास दुरुस्त रहते जहाँ आकर गर्दन झुकाकर तुरन्त भाग जाना चाहिए था वहीं बहुत आहिस्ता-आहिस्ता इधर-उधर देखता टहल रहा था। संकोच क्या होता ? एक तरह से ज्ञान शून्य, अनुभूति शून्य, संज्ञा शून्य हो रहा था। रोशन थियेटर से अजमेरी दरवाजे की ओर जो जगह है, जहाँ नीची बेरौनक दुकानें हैं और ऊपर अंधेरी कोठरियों में टूटी हुई चिकों की आड़ में ग़रीब रंडियाँ रहती हैं वहीं मैं टहलने लगा।

जैसे डाक्टर, वकील और दुकानदारों में छोटे-बड़े का दर्जा है वैसे ही रंडियों में भी है। एक रंडियां रहती हैं चावड़ी में। जहाँ अट्टालिकाओं पर फूलों के गजरे लटके रहते हैं। रंगीन कांच के मनकों के पर्दों में से बिजली से चकाचौंध झाड़ फानूस से लदी छत दिखाई देती है। बाजार खस और हिना की गंध से भरा रहता है। ऊपर से नूपुरों की झनकार, तबला, वेला और सारंगी की सुर लहरी के बीच हँसी का कोलाहल सुनाई पड़ता रहता है।

दूसरी रंडियाँ हैं रोशन थियेटर से नीचे की ओर। प्रायः धुन्धली दीवार गिरी लालटेन छज्जे के खम्भे से लटकी रहती और उसके साथ ही जैसे रोशनी पर आये पतंगों को निगलने के लिए छिपकली ताक लगाये बैठ रहती है, वैसे ही मुँह पर सफ़ेद रंग पोते रंडियाँ ग्राहकों की बाट जोहा करती हैं। कहीं-कहीं मिट्टी के तेल की ढिबरी धुँआं उगलती दिखाई देती है और उसके समीप एक सूखा था हताश मुँह प्रतीक्षा में आँखें फैलाए दिखाई देता है।

मैं कभी क़दम-क़दम चलने लगता और कभी गिरते शरीर को सम्भालने के लिए कमर पर हाथ रख ऊपर नीचे इधर-उधर देखने लगता। मुझे जान पड़ा ऊपर संकेत से मुझे कोई बुला रहा है। फिर ऊपर देखा, मिट्टी के तेल की ढिबरी के समीप बैठने वाली कुछ रंडियां आमने सामने से मुझे पुकार रही थीं। चार दिन में उस समय मुझे पहिली दफ़े किसी ने अपने समीप आने के लिए कहा था। विमूढ़ता की अवस्था में जो दाईं और सबसे समीप थी, उसी की ओर देखकर मैंने पूछा—'क्या है ?'

'उतावली में उसने जवाब दिया—'जो चाहे दे देना।'

'देना'—शब्द सुनकर मेरा उत्साह भंग होगया परन्तु उसका उत्साह

नहीं टूटा। उसने मानों बिलख कर कहा—'अरे खुदाके वास्ते आजाओ, आजाओ !'

मैं समझता हूँ चार दिन निरन्तर भूखा रहने से मनुष्य में विवेक और व्यक्तित्व नहीं रह जाता। मशीन की तरह उसके हुकुम से मैं जीने पर चढ़ने लगा। जीने पर जब पैर लरज रहे थे और दोनों ओर की दीवारों का सहारा लेकर मैं ऊपर चढ़ रहा था, उस समय भी मुझे यह खयाल न आया कि मैं ऊपर क्यों जा रहा हूँ।

उसने कंघी पट्टी कर बाल ज़रूर बाँधे हुए थे परन्तु शेष उसके कपड़ों को देख उसे मैंने किले के सामने परेट में सोने वाले जीवों से भिन्न नहीं समझा। ऊपर कच्ची कोठरी में एक चटाई बिछी हुई थी और मिट्टी का एक बदना रखा था। मैंने प्रश्नात्मक दृष्टि से उसकी ओर देखा। उसने गिड़गिड़ाकर उत्तर दिया—

'जो तुम चाहो अल्ला के नाम पर दे देना, मैं मरी जा रही हूँ। आज चार रोज़ मुझे यहाँ आये हो गये, अल्ला की कसम एक दाना मेरे मुँह में नहीं गया।'

न जाने क्यों, मैंने पूछ लिया—'यहाँ कैसे आई ?'

उसका दुःख उबल पड़ा। रोकर उसने कहा—उसका मालिक उसे मार पीट कर दूसरी लुगाई को ले कहीं चला गया। जब भूखी तीन दिन घर में बैठी रोती रही तो एक 'मामा' उसे ढाडस बँधा कर यहाँ बैठा गई। पैसा आने पर आधा-आधा बाँट लेने की बात थी, पर क़िस्मत एक भी आदमी नहीं आया और भूख के मारे जान निकली जा रही थी। मामा आती है मिट्टी के तेल की डिबिया जला जाती है, ढाड़स बँधा जाती है कि आदमी आयेंगे।

वह जो अपने शरीर का सौदा करने बैठी थी, न जाने क्यों मुझे

उसके प्रति ज़रा भी ग्लानि न हुई। कह नहीं सकता, मेरा सद-विवेक मर गया था या स्वयम् मेरे अपने पेट की आग उनकी ओर से सफ़ाई दे रही थी। उस समय एक रोटी के लिए मैं क्या कुछ करने को तैयार न हो जाता, यह आज नहीं कह सकता।

अपने ही जैसे दूसरे व्यक्ति को पा अपना दुख मैंने भी कह सुनाया—कुछ खाये चार रोज मुझे भी हो गये। जालंधर में मकान है, इमतिहान पास कर कलकत्ते में चाचा के पास नौकरी करने जा रहा था। एक दिन के लिये दिल्ली देखने को ठहर गया। घर के लोगों ने समझाया था दिल्ली में जेबकट बहुत हैं, इस लिये सब सामान, रुपया और कलकत्ते का टिकट संदूक में रख, सराय की कोठरी में ताला लगा बाज़ार से खाना खाने गया था। तीन घण्टे बाद घूम फिर कर लौटा तो कोठरी चपाट खाली पड़ी थी। घबरा गया। कोई अपना है नहीं, बैठने को ठांव नहीं।

सूखी निराश दृष्टि से मेरी ओर देख उसने कहा—'तो फिर तू यहाँ क्यों आया ? और रो पड़ी।'

जीना उतरना चढ़ने से कहीं अधिक कठिन जान पड़ा। एक सीढ़ी पर साँस लेने को बैठा था उस समय ख़याल आया दुखी दुखी को क्या सहायता दे सकता है ?

नीचे उतरा ही था कि एक सिपाही ने डाँट कर पूछा—'क्यों बे क्या हो रहा है ?' चुप रह गया,—क्या जवाब दे सकता था ?

'क्यों बन रहा है बे ?'—सिपाही ने कहा। मैं फिर भी कुछ न कह सका। डांट कर उसने कहा—चल थाने में १०९ में चालान होगा।'

१०९ और ११० क्या होता है, मैं नहीं जानता था। खैर थाने जाना ही पड़ा। थाने न जाता तो शायद कभी घर न पहुँच पाता।

'लम्बोदर थानेदार की भीषण मूर्ति देखते ही सुध कुछ ठिकाने आगई।
काँपते-काँपते बोला—(Sir I am innocent) हुजूर मैं बेकसूर हूँ।

अंग्रेजी के इस वाक्य से सब काम बन गया। घर तार दिया गया और सब काम हो गया—परन्तु वह सन्ध्या।

इसी से अब उन बाजारों में जाते मुझे कुछ घृणा और लज्जा अनुभव नहीं होती।"

भावुक—

परीख के जीवन की महत्वाकांक्षा कल्पना में ही परिमित थी। कौलिज की पढ़ाई समाप्त करने के पश्चात् बिना दुविधा के उसे बैंक में नौकरी मिल गई। समय आनेपर वह अकउण्टेण्ट, बैंक सेक्रेटरी और मैनेजर बन जायगा इसमें किसी को सन्देह नहीं था।

पग-पग पर पेट की चिन्ता न रहने के कारण उसके स्वभाव और व्यवहार में कमीनेपन का नाम न था। जीवन में पूर्णता की ओर ही उसका लक्ष था। स्वभाव में कुछ उछृंखलता, कुछ भावुकता का मिश्रण होने से उसका व्यवहार इस ढंग का था कि पुरुष सहयोगियों में विशेष समादर न पाकर भी स्त्री-समाज में वह आकर्षण का केन्द्र था। स्त्रियों के पीछे दौड़ने वालों में उसकी गिनती न थी फिर भी उसका हृदय-मन्दिर 'प्रतिमा' से शून्य न था।

मन में 'प्रतिमा' की आराधना करने पर भी उसके मुँह पर ताला था। कुछ परिस्थिति भी ऐसी ही थी। भले आदमियों के जिस मुहल्ले में मकान का हिस्सा ले वह अकेला नौकर के साथ रहता था, उसी मुहल्ले के एक अभिजात और अति सुसंकृत परिवार में उसे जबतब आने जाने का मौका रहता था। इसी परिवार की एक कुमारी के प्रति अपने हृदय को अंजली में ले वह अर्पण कर चुका था।

× × ×

सभी सद्गुणों की अपपेक्षा परीख के मन में 'वफ़ादारी' के प्रति

विशेष श्रद्धा थी। यहाँ तक कि कुत्तों को वह निकटतम सम्बन्धी की अपेक्षा भी अधिक प्यार की नज़र से देखता था।

उसके पास कोई कुत्ता न था। जीवन की यह न्यूनता उसके मन में खटकती ही रहती थी। ढग (Fashion) से रहने के लिये भी कुत्ता एक आवश्यक चीज़ है।

सन्ध्या समय वह कदम-कदम मकान लौट रहा था। मुख्य सड़क के एक बंगले से एक पिल्ला उसके पीछे हो लिया। पिल्ले का वह गदबदा धुँघराले बालों से लिपटा, ऊन के बंडल सा शरीर और छोटी-छोटी टाँगों से उसका पीछे दौड़ते चलाआना देखकर उसका मन उमग उमग कर रह जाता था।

परीख सड़क से गली में पहुँचा। आधी गली पारकर भी जब पिल्ले की वफ़ादारी कम न हुई तो उसकी अवहेलना करना परीख के लिए सम्भव न रहा। उसने उसे गोद में उठा लिया और जल्दी-जल्दी कदम बढ़ा वह मकान पर आ पहुँचा।

पिल्ला बहुत ही कमसिन मालूम होता था। शायद वह स्वयम पानी या दूध न पी सके, इसलिये परीख ने उसे रुई की बत्ती बनाकर दूध पिलाना शुरू किया परन्तु पिल्ले को स्वयम दूध पीते देख उसके मन की कली खिलगई सम्भवत: वैसे ही जैसे नवजात शिशु को स्तनपान कराकर माता के मन की कली खिल जाती है।

बच्चों के सम्पर्क में जवान और बूढ़े भी बच्चे बन जाते हैं। एकान्त में तोतले बच्चे को गोद में लेकर महा विद्वान और विचक्षण भी जैसे मुँह बना बनाकर 'नितान्तप्राकृतिक' भाषा में जिसे किसी दूसरे हम सुखुन के लिये समझना दुशवार है, हम कैसे तुतलाने लगते हैं। उस समय हम शायद शिशु को उसी की भाषा में बोलकर समझा देना चाहते

हैं। पानी को 'मम' दूध को 'दुदू' और 'रोटी खाओ' को 'लोती काओ' कहने लगते हैं। आँखे चमकने लगती हैं, होंठ आगे बढ़ जाते हैं और नाक उन्मेश मे फूल जाती है।

यह सब लीला परीख अपने एकान्त कमरे में 'मल्ली' (पिल्ले) के साथ करता था। अपने हाथ से उसे दूध पिलाता, सेंट लगा देता और मकान पर अधिकाँश समय उसे गोद में लिये रहता। बैंक जाते समय नौकर को मल्ली के विषय में सब बात बारीकी से समझा देने पर भी बैंक के काम काज के बीच उसका ध्यान अनेक बेर मल्ली की ओर खिंच जाता।

हृदय की 'प्रतिमा' के अतिरिक्त उसे किसी की चिन्ता थी तो मल्ली की। 'प्रतिमा' एक महत्वाकाँक्षा थी जिसका आधार था कल्पना। परन्तु मल्ली थी प्रत्यक्ष और स्थूल सत्य, जो परीख के मन को केन्द्रित कर बैठी थी। वह 'प्रतिमा' के विषय में मुह नहीं खोल सकता था। क्या किसी के लिए उस प्रेम की महत्ता और सूक्ष्मता को समझ सकना सम्भव था।

दो सप्ताह जबसे मल्ली आई थी परीख के मनमें यह उधेड़ बुन न हुई थी कि किस प्रकार बिना संदेह का कारण पैदा किये वह उस सभ्य नव संस्कृत परिवार में जाकर 'प्रतिमा' का दर्शन कर आ सकेगा।

कहते हैं जिन बच्चों का अधिक यत्न होता है, वही अधिक बीमार रहते हैं, मल्ली भी बीमार होगई। उसकी दौड़ धूप बन्द होगई, दूध पीना भी उसने छोड़ दिया। एक डाक्टर के यहाँ से अपने लिये हाज़मे की दवाई लाकर उसने मल्ली को खिलाई पर कुछ न बना।

मल्ली का दुख देख, संकोच छोड़ परीख सब कुछ करने को तैयार होगया। पशु-हस्पताल तक डाक्टर से राय लेने गया। शनिवार को वह एक बजे ही बैंक से लौट आया। मल्ली की हालत खराब थी। एक छोटी सी टोकरी में उसे ले वह फिर हस्पताल ले गया। डाक्टर ने उपेक्षा से

देखकर कहा—'यह कुतिया बचेगी नहीं।' परीख के मानो हृदय पर दिवार गिर गई। मन के आवेग को दबा कर उसने डाक्टर से पूछा—'फिर'!

डाक्टर ने उसके मनकी करुणा का आभास पाकर कहा—'इसे तककीफ़ बहुत ज्यादा होरही है, आप चाहें तो इसे क्लोरोफार्म कर दिया जाय, तकलीफ़ से बच जायगी।'

कुछ देर करुणा आँखों से बिलखती हुई मल्ली की ओर देखकर एक गहरा साँस खींच उसने कहा—'अच्छा'।

परीख के देखते देखते मेहतर ने एक तार की प्याली में रुई रख, उसपर दवाई छोड़ मल्ली के मुँह पर प्याली को दबा दिया। मल्ली दम घुटने से कुछ छटपाई पर कुछ ही क्षण में वह निश्चल होगई। उसकी पीड़ा समाप्त हो गई। मेहतर ने मल्ली को पूँछ पकड़कर फेंक दिया। परीख के चेहरे की त्वचा से मानों ज्वाला सी निकल रही थी। फ़ीस का एक रुपया डाक्टर की मेज पर फेंक कर वह बाइसिकल पर चढ़ लौट पड़ा।

ज्यों त्यों ओठ दबाये वह मकान तक पहुँचा। साइकल बरामदे में फेंक वह भीतर कुर्सी पर बैठा ही था कि नौकर ने एक तार का लिफ़ाफ़ा उसके हाथ में लाकर दिया। तार छोटे भाई का था। उसने परीक्षा में पास होने की खुशखबरी भेजी थी। परीख के आहत हृदय पर इस समाचार का कुछ भी असर न पड़ा। वह मुँह ढांपकर कुर्सी पर पड़ रहा।

मेज़ पर चाय रख कमरे का पर्दा उठा उसे बुलाने के लिये नारायण ने भीतर झांका। लेकिन आँखों पर रूमाल रखे उसे चुपचाप पड़े देख बिना किसी किसम की आहट किये वह लौट गया।

गिरधारीलाल बाबू मुहल्ले के नारद थे। दफ्तर से लौट प्राय वे परीख के समीप बैठ सटक से खमीरा सटका करते थे। नारायण से उन्होंने पूछा—'बाबू कहाँ हैं'? नारायण समझदार नौकर था। उसने गम्भीर

स्वर में उत्तर दिया—'भीतर बैठे हैं, तबियत कुछ खराब है।'

गिरधारीलाल बाबू की तबियत की खराबी का कारण पूछने पर उसने बहुत धीमे स्वर में बताया—'बहुत दिन से बुआजी की तबियत खराब थी······आज अभी तार आया है तभी से······। बुआ जी इन्हें बहुत मानती थीं।

'हूँ'—कहकर गिरधारीलाल बाबू ने परदा हटा कर देखा, परीख अब भी आँखों पर रूमाल रखे खड़ा था। गिरधारीलाल भी पीछे हट आये।

ऐसी नाजुक हालत में अकेले भीतर जाने की अपेक्षा दो चार इष्ट मित्रों के साथ लेकर सान्त्वना बँधाने जाना ही उचित था। सामनेवाले मकान में इस समय लाला अर्जुनलाल नित्य संगीत का अभ्यास किया करते थे दुर्घटना की खबर पा उन्होंने बाजा बन्द कर दिया और नीचे आगये।

पन्द्रह बीस मिनट में तीन चार सज्जनों ने चुपचाप परीख के कमरे में प्रवेश किया और चुपचाप बैठ गये। ला० श्रीराम वयोवृद्ध थे, उन्होंने खांस कर गम्भीर स्वर में कहा—'बेटा परीख!'

परीख ने आँख पर से रूमाल हटाकर देखा—सहसा इतने आदमियों के चुपचाप आकर बैठ जाने से वह सहम-सा गया। आँखें पोंछ लेने पर भी उनमें आर्द्रता और लाली बाकी थी।

ला० श्रीराम ने पूछा—

'बुआजी को कितने दिन से तकलीफ़ थी? उनकी आयु भी काफ़ी होगी। इस तरह दिल छोटा करना ठीक नहीं। तुम तो खुद समझदार हो, संसार की गति तो तुम जानते हो ऐसी ही है।'

बाबू गिरधारीलाल ने पूछा—'बुआजी को क्या तकलीफ़ थी?'

परीख के लिए कुछ कहना कठिन था। उसका गला रूंध रहा था। वह कुछ समझ न सका। अर्जुनलाल ने पूछा—'बैंक से लौटकर ही तो

आपको तार मिला है न ! दो बजे मुझे नारायण गली में मिला था उस वक़्त तक तो कोई खबर नहीं आई थी ।'

परीख की समझ में समस्या आ गई परन्तु उसने उसके मुख पर दोहरी मोहर लगादी । इन भले आदमियों के सन्मुख भेद को खोल कर रख देने की उसकी हिम्मत कैसे हो सकती थी ? अपने हृदय के क्षोभ के कारण को वह किस प्रकार प्रकट कर सकता था ? एक पिल्ले के लिए एक जिम्मेदार सुशिक्षित व्यक्ति का रोना क्या विश्वास कर लेने लायक़ बात है ?

परीख हथेली पर ठोड़ी रखे चुप बैठा रहा । उसके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला । अपने दुख से और लोगों की ग़लतफ़हमी की चोट से उसका मन और भी व्याकुल हो रहा था । इन भद्र पुरुषों का यह भ्रम उसे एक प्रकार का अत्याचार मालूम हो रहा था । मानों उसे लज्जित करने के लिए ही सबने मिलकर एक प्रकार का षडयंत्र रच डाला हो ।

प्राय: पैंतालीस मिनिट तक उसे भरपूर आश्वासन देकर भद्र पुरुष विदा हो गये । परीख इन लोगों से छुटकारा पाने की तसल्ली में सांस भी लेने नहीं पाया था कि 'प्रतिमा' का भाई आ पहुँचा । फिर वही सांत्वना, समवेदना के निश्चित, परम्परागत शब्द उसके कानों में गये और उसकी ग्लानि को कुरेदने लगे ।

प्रभात के उठकर जाते ही परीखने सोचा, न जाने अभी कितने और भले आदमी आकर तमाशा करेंगे ? कल रविवार की छुट्टी है ही, इस झगड़े से पिण्ड छुड़ाने के लिये क्यों न एक दिन के लिये वह जालन्धर चला जाय ?

नारायण को बुला कर उसने तुरंत टांगा लाने के लिये कहा और एक सूट केस में जरूरी कपड़े डालकर तैयार होगया ।

एक्सप्रेस तेज़ी से चली जा रही थी। ठण्डी हवा के झोंकों और गाड़ी की तीव्र गति ने उसके क्षुब्ध हृदय को अपनी गोद में झुला-झुलाकर उसके मनके बोझ को बहुत कुछ हल्का कर दिया।

अब दूसरी उलझन उसे व्याकुल करने लगी। वह यों एकाएक केवल एक दिन के लिये घर दौड़ आने का क्या माकूल कारण बता सकेगा ? बुआजी की बहुत याद आई थी कह देने से निम्सन्देह उनका मन अभिमान से गदगद हो जायगा परन्तु क्या इससे पिताजी और भाई का समाधान हो सकेगा ? छोटे भाई को पास होने की बधाई देने आने की बात अलबत्ता मौजूँ थी लेकिन वह था रुड़की में। ख़ैर, कुछ कह दिया जायगा। अब लौट चलने की गुंजाइश नहीं थी।

× × ×

परीख दुपहर का खाना खाने के बाद बरामदे में बैठा पिताजी से बैंक में अपने सुअवसरों और कठिनाइयों की आलोचना कर रहा था। तार का चपड़ासी आया और पारीख के नाम का एक तार देकर लौट गया।

पिताजी ने कहा—'क्या है, देखो तो अर्जेण्ट तार है।'

परीख ने लिफ़ाफ़ा फाड़कर देखा—तार में लिखा था,—"हार्दिक शोक और समवेदना, परमात्मा मृतात्मा को शांति और सम्बन्धियों को सांत्वना प्रदान करें।" नीचे हस्ताक्षर थे 'प्रतिमा' के।

परीख के होठों पर मुस्कराहट फिर गई देखकर पिता ने पूछा—'क्या खुशखबरी है ?' परीख ने जल्दी में कोई उत्तर न पाकर कहा—'एक मित्र ने पास होने की खुशखबरी दी है।'

पिता ने पूछा—'क्या वह भी रुड़की में पढ़ता है ?' परीख ने कहा नहीं दिल्ली सेक्रिटेरियट में नौकरी के लिये कम्पीटिशन में गया था।'

सोमवार को बैंक में हाज़िर होने के लिये रात की ट्रेन से लौटना जरूरी था। फुर्सत में उसने सोचकर एक बयान तैयार कर लिया। वह जानता था लाहौर लौटने पर सभी परिचित भद्र पुरुष बुआजी के लिये शोक प्रकट करने के लिये उसे घेर लेंगे। बैंक में भी लोगों की हमदर्दी के के उत्तर में उसे कुछ कहना ही होगा।

टाँगे पर गली में से 'प्रतिमा' के मकान के सामने से गुज़रते हुए उसे जान पड़ा खिड़की में से 'प्रतिमा' ने उसे देख लिया है। घर पहुँच बैंक के लिये कपड़े बदल वह बैठा ही था, नारायण ने खबर दी कि, प्रभात बाबू की बहिन जी उसे पूछ रही हैं।

परीख बाहर निकल आया। 'प्रतिमा' के चेहरे पर समवेदना की छाप बहुत गहरी और स्पष्ट दिखाई दे रही थी। परीख द्वारा पेश की गई कुरसी पर बैठकर 'प्रतिमा' ने पूछा—'क्या बुआजी की तबियत बहुत दिन से खराब थीं?'

परीख ने तुरन्त उत्तर दिया—'हाँ थी तो परन्तु मुझे कुछ मालूम न था। उनके यहाँ से वर्सों से कोई पत्र भी नहीं आया था। वे रिश्ते में बुआजी की बहिन लगती थीं। बचपन में मैं उनकी गोद में खेला था, वे मुझे बहुत मानती थीं, उनके अपना कोई था भी नहीं।'

दूर के सम्बन्ध की बात जानकर 'प्रतिमा' के चेहरे की गम्भीरता में बहुत कुछ फरक पड़ गया उसने क़द्रदानी के तौर पर कहा—'वे बेचारी आपकी दूर की सम्बन्धी थीं तिसपर भी आपने उनके लिये इतना अनुभव किया। आप बहुत ही करुण स्वभाव और भावुक हैं। जितनी बेपरवाही आप व्यवहार में प्रकट करते हैं, दरअसल वह आपकी आर्द्रता का बाह्य आवरण है। बात कहकर 'प्रतिमा' के ओठों पर झीनी-सी मुस्कराहट फिर गई।'

'भावुकता' के प्रसंग ने परीख के हृदय में अपने दुख के 'वास्तविक कारण' की स्मृति को ताजा कर दिया। एक दफ़े उसे अनुभव हुआ 'वास्तविक कारण' को छिपाने की कुछ भी आवश्यकता न थी—कम-से- 'प्रतिमा' के सन्मुख तो वह लज्जा का विषय न होकर महत्ता का ही कारण होता। भेद को यथातथ्य रूप में प्रकट कर वह इस हृदय-वंध्या रमणी की दृष्टि में न जाने कितना ऊँचा स्थान पा सकता था? वह इसी विचार में डूब गया।

परीख को दुविधा में देख 'प्रतिमा' ने कहा—"भावुकता से मेरा अभिप्राय कुछ और नहीं मैं आपके हृदय में ममता और कृतज्ञता की ही बात कह रही थी।"

परीख ने एक दफ़े कह देने के लिये सांस लिया परन्तु वह विवश होकर चुप रह गया। कुछ क्षण बाद परीख ने कहा— 'ममता का भी एक क्षेत्र है, सीमा है। उसे बखेरते फिरने से उसकी क़दर शेष रह जायगी?'

प्रतिमा ने कहा, नहीं, यदि ममता और कृतज्ञता की सीमा नियत की जायगी तो वही सीमा मनुष्यत्व की भी होगी।

परीख ने कहा—'यदि ममता और कृतज्ञता की आपके हृदय में इतनी क़द्र है तो एक कुत्ता पालिये।'

प्रतिमा ने मुस्कराकर कहा—'आपने तो एक पाला है न?'

परीख के चेहरे पर वेदना की कालिमा छा गई। प्रतिमा उसी ओर देख रही थी, मानों सहसा नींद से जागकर उसने कहा—'ओफ़ हो।'

मृत्युंजय

"Questi non hanno speranza di Morte,
E, la lor cieca vita e tanto bassa,
Che invidiose son d' ogni oltra sorte."
"Canto terzo."—Inferno,' Dante.

"उन्हें मर जाने की भी तो आशा नही,
और उनका आशा-किरण रहित जीवन इतना निकृष्ट है,
कि किसी भी प्रकार का परिर्वन आये, वे उसके लिए आकुल हैं।"
'तीसरा अध्याय—नरक', दांते

उपनिषदों मे कथा है :—नाचिकेता यमराज के द्वार पर धरना देकर जा बैठे। उस समय यमराज अपने भैंसे पर सवार हो कहीं बाहिर गये हुए थे। जब वे लौटे, उस समय ब्राह्मण बालक को उनके द्वार पर बैठे तीन दिन और रात बीत चुके थे। वे तीनों दिन रात उस ब्राह्मण-तनय ने निराहार ही विता दिये थे। ब्राह्मण को भूखा रखने के महापाप से यमराज भी थर्रा उठे। हाथ जोड़कर बोले—'हे ब्राह्मण तनय! भोजन कर कृतार्थ कीजिये।'

ब्राह्मण बालक ने उत्तर दिया—'बरदान पाने पर ही अन्न ग्रहण करूँगा।'

यमराज वर देने के लिये प्रस्तुत हुए। नाचिकेता बोले—'मृत्यु को जीतने का उपाय जानना चाहता हूँ।'

यमराज ने इसके बदले पृथ्वी का चक्रवर्ती राज्य देने की इच्छा

प्रकट की परन्तु ब्राह्मण बालक अपने हठ पर डटा रहा। कहते हैं, वह रहस्य उसने जान लिया। तबसे भारत की ब्राह्मण संतान के हाथ वह ज्ञान बपौती के रूप में चला आता है।

मृत्यु को जीतने का अर्थ है, मृत्यु से भय न करना। डाक्टर प्रताप ने 'यम नाचिकेता सम्वाद' पढ़ा था या नहीं, नहीं जानता। शायद नहीं ही पढ़ा होगा परन्तु मृत्यु उससे हार मान गई थी, यह मेरा विश्वास है। किस ढंग से वह मृत्युंजय होगया था, यह उसी के मुख से नीचे देता हूँ। सम्भव है कोई वाग्मी तत्वज्ञ एक उपनिषद उसके नाम से भी बना सके।

× × ×

"मैंने जब से सुध सम्भाली मां को ही जाना। मैं ग़रीब माँ का एक लौता बेटा था। मेरे पिता मृत्यु से पूर्व कुछ रुपये छोड़ गये थे। मां ने उनमें से कभी एक पैसा न छुआ। तुम्हें विस्मय होगा, मेरी मां ने मुझे लोगों के घर का चौका बर्तन करके पाला है। पिता जो कुछ छोड़ गये थे उसमें सदा वह कुछ डालती ही गईं, इस विचार से कि लड़के की पढ़ाई में लगेगा।

बच्चों को समझ नहीं होती। मैं भी बचपन में वैसा ही था। स्कूल में किसी लड़के की गोटेदार टोपी देख कर बिगड़ उठता। धरती पर लोट लोट कहता—मैं भी ऐसी टोपी लूँगा। माँ मुझे गोद में उठा कर मनातीं। कहतीं—मैं अपने राजा बेटा के लिये बहुत बढ़िया टोपी बाजार में बनने के लिये दे आई हूँ। मेरा राजा बेटा पहनकर स्कूल जायेगा। इस तरह मैं कितनी चीजों के लिए मचल उठता। उस समय मैं नहीं समझता था परन्तु अब समझता हूँ—मां को इससे कितना कष्ट होता था। उसकी आँखों में आँसू छलछला आते, वह एक लम्बी साँस लेकर कहती —'हाय राम जी'।

स्कूल में आधी छुट्टी के समय लड़के पैसा खरचते हैं। उस समय मैं सतृष्ण नेत्रों से खोमचे वाले के चारों ओर घूम घूमकर उन्हें चाट खाते देखता था। जिस दिन रहा न जाता उस दिन माँ का आँचल पकड़ धरती पर लोट लोट पैसे के लिए जिद् करने लगता। माँ वही बात कहतीं—'बेटा कल पैसा दूँगी।'

वह मुझे गोद में ले झूठी हँसी हँसने का यत्न कर कहतीं,—'मेरा राजा बेटा डाक्टर बनेगा, सन्दूक भर रुपये लायेगा।' हमारी हालत कितनी गरीबी की थी; पर सुखी थे।

जब मैंने मिडिल का इम्तिहान दिया, उस समय तक हम लोगों के पास एक ही चारपाई थी उसपर दो बोरियाँ बिछाकर हम लोग रजाई ओढ़ लिया करते थे। धोबी का धोया कपड़ा मैंने मेडिकल कालेज में भरती होने तक नहीं पहरा।

जब मिडिल की परीक्षा में मैं छात्रवृत्ति लेकर पास हो एन्ट्रेस में भरती होगया, माँ के दूसरों का चौकाबर्तन करने की बात सोचकर सिर लज्जा से नीचे होने लगा। पर माँ मानती ही न थी। छः रुपये में हम दोनों का निर्वाह हो सकता था। आखिर माँ भी तो आठ सात ही कमाती थीं। माँ कहती—'बेटा तेरी कॉलिज की पढ़ाई का खर्च कैसे जोड़ूँगी, और फिर लाल तेरा व्याह भी तो मुझे करना है।'

मैंने धमकाकर कहा—'अगर तू लोगों का चौकावर्तन करेगी तो मैं चौकवाले कुए में कूद पड़ूँगा।'

माँ ने विष्णु, महेश, काली मना कर कहा—'बेटा ऐसा कुवचन मुँह से नहीं बोलता।' अस्तु चौकाबर्तन का काम छुटा पर उसने दूसरा काम निकाल लिया। वह नाले-आजार बन्द बुननेलगी। कभी बीज छीलकर दो पैसे की मज़दूरी कर लेती।

जब एन्ट्रेंस की परीक्षा में उत्तीर्ण हो मैंने पन्द्रह रुपये का वजीफ़ा पाया, माँ की प्रसन्नता का ठिकाना न था। उसने मुहल्ले भर में बतासे बाँटे। वह मेरा नाम लेकर जीती थी। कड़ी मेहनत और उपवास से अस्थी पंजर मात्र अवशिष्ट उसके शरीर में यों ही रौनक रहने लगी। हमारी अपनी हैसियत के लोग आ आकर माँ से मेरे ब्याह की बात चीत करने लगे। माँ सब का दिल रखकर बात करती थी परन्तु उसने किसी से हामी नहीं भरी। उसे विश्वास था उसके लड़के की बरात किसी डिप्टी या दीवान के यहाँ जायगी।

अब उसे एक और चिंता लगी। लड़के को कहीं कुछ हो न जाय। मेरी रक्षा के लिये वह नित्य प्रातः नदी स्नान कर पूजा करने लगी। उसकी धारणा थी, मेरा कल्याण रावी किनारे वाले महादेव जी की प्रसन्नता पर निर्भर है। इसलिये वह नित्य बड़े सवेरे उठ, महादेव जी के चरणों में प्रमाण करने 'रावी' जाने लगी। गर्मी, सर्दी आँधी बर्सात किसी बात से इस नियम में व्याघात नहीं पड़ सकता था। ज्यों ज्यों उसका शरीर क्षीण होने लगा उसकी निष्ठा और पूजा बढ़ने लगी। आखिर जब मैं M. B., B. S. final में पहुँचा तो उसका शरीर जर्जर मात्र रह गया। मैंने कई दफ़े समझाया—'सर्दी खाजाओगी, निमोनिया हो जायगा।' परन्तु उसने कभी न माना।

मैं परीक्षा की तैयारी के लिये तीन बजे सुबह उठकर पढ़ाई करता था परन्तु वह उससे पहले ही गायब होजाती। पाँच बजे सुबह जब मैं रजाई में छिपकर रोशनी के सामने ठिठुर-ठिठुर कर पढ़ाई कर रहा होता, वह एक पतली ऊनी चादर ओढे हरिनाम जपती, पूजा कर रावी से लौटतीं।

मैं कहता—'माँ इस तरह तू मर जायगी।'

वह हंस कर जवाब देती—'बच्चा तेरे मुंह में घी शक्कर, रामजी मुझे समेट ले और मुझे क्या चाहिए; बस एक तेरी बहू का मुंह देखना बाक़ी है।

आखिर एक दिन वही हुआ जिसकी मुझे आशंका थी। उसका शरीर अस्वस्थ था। मैंने कहा—'एक दिन तेरे जल के बिना महादेव जी प्यासे न मर जायँगे।' पर वह मेरे सोकर उठने के पहले ही नदी स्नान के लिए जा चुकी थी।

मैंने परीक्षा कर देखा, डबल निमोनिया होगया था परन्तु खैरियत इतनी थी कि साथ ज्वर भी था। चेतन-अर्धचेतन अवस्था में वह केवल हरिनाम जप रही थी। कभी कहती—'······को कहदो अबके वैसाख में लड़के का ब्याह जरूर कर दूँगी। अब मेरे शरीर का क्या भरोसा; विरधा-वस्था का पका फल है।'

डाक्टर सोंधी के परामर्श से मैंने नुसखा तैयार किया और शुश्रुषा के लिए हर समय समीप बैठा रहने लगा। वह मुझे कॉलिज जाने के लिए विवश करती, कहती—'तेरा डाक्टरी का इम्तिहान है तू कॉलिज जा।'

कॉलिज में केवल अवकाश लेने के लिये गया था। मुझे घबराय हुआ देखकर कर्नल रौबर्ट ने पूछा—'What is wrong with you my boy? बेटा तुम्हें क्या हुआ?'

मैंने रुँधे हुए गले से उत्तर दिया—'मेरी माँ की अवस्था नाजुक है', मेरी आँखें भीग आईं।

सर्जरी (शल्यक्रिया) में मेरा हाथ साफ़ होने से प्रिंसिपल कर्नल रौबर्ट मुझपर बहुत प्रसन्न रहते थे। करुणा से उन्होंने कहा—'पागल हुए ओ, घबराओ नहीं, मैं तुम्हारी माँ को देखने आऊँगा।'

तीसरे पहर वे आये। प्रायः बीस मिनट तक उन्होंने माँ को देखा।

कुछ तदबीर उन्होंने न बताई। बताने को कुछ था भी नहीं। उन्होंने कहा—'तुम तो खुद डाक्टर हो, सब कुछ समझते हो।'

माँ मर गई। मैं पाँच दिन तक घर से बाहर नहीं निकला। लोग मुझे समझाने आ बैठते परन्तु मुझे किसी का समझाना असह्यसा लगता था। मेरा संसार उस दिन समाप्त होगया मालूम हुआ कि जिस डोर से मेरे जीवन की पतंग चढ़ रही थी, वह सहसा कट गई और मैं अतल अधर में गिरा जा रहा हूँ—जैसे वैलून से हवा निकल गई हो। संसार और जीवन मेरे लिए समाप्त होगया।

परीक्षा देने का मेरा विचार नहीं था। प्रिंसिपल साहिब के अनुरोध से मुझे परीक्षा देनी ही पड़ी। पास मैं कैसे होगया इसे भी वे ही जानें। उन्हें आशा थी, मैं सर्व प्रथम रहूँगा पर वैसा न हुआ, सम्भव भी न था।

एक दिन उन्होंने मुझे बुलाकर कहा—'देखो परीक्षा में उपेक्षा से काम लेकर तुमने अच्छा नहीं किया। अब तुम्हारा कप्तान की commission में आना कठिन है परन्तु कर्नल रोज़-हिल मेरे मित्र हैं, उन्होंने तुम्हें पालमपुर में हस्पताल का इंचार्ज बनाना स्वीकार कर लिया है। यदि तुम मन लगाकर काम करोगे तो उन्नति का मौका रहेगा।

मैंने कहा—'नौकरी मैं नहीं करूँगा।'

प्रिंसीपल साहिब जानते थे, मैं बहुत गरीब हूँ। डाक्टरी की प्रैक्टिस चलाने लायक़ सरंजाम मुझ से होना कठिन है। विस्मय से उन्होंने कहा—'नौकरी नहीं करोगे? पागल हुए हो क्या?—समझाया कि पालमपुर काँगड़े की उपत्यका में मनोरम स्थान है। वहाँ मेरा स्वास्थ्य तो सुधरेगा ही, मन भी बहल जायगा।'

नितान्त अनिच्छा से मैं पालमपुर गया। हस्पताल के कम्पाउण्डर के अतिरिक्त कोई भी मुझसे प्रसन्न न था। मैं कुछ भी न करता, न देखता।

पाल्मपुर का हस्पताल नया ही था। पहाड़ी लोग प्रायः भीरू और वहमी होते हैं। वे यूँ भी बहुत कम आते थे। तहसीलदार, थानेदार कभी कभी मुझसे नुसखे लिखा लिया करते थे वर्ना कम्पाउण्डर ही डाक्टर था।

मैं प्रायः बरामदे में या बाहिर घास पर डेकचेयर डाले बैठा देवदार और चीड़ के घने जंगलों से छाये पहाड़ों को या हिमावृत्त पर्वत-शिखिरों की ओर देखा करता। मुझे मालूम होता—उन श्वेत पर्वत-शिखिरों में श्वेत चादर ओढ़े मेरी माँ बैठी मेरी प्रतीक्षा कर रही है। दूर से मुर्गे की दर्द भरी बाँग सुनकर मेरा ध्यान टूट जाता।

हस्पताल के नीचे-घाटी के उस पार ढलवानों पर चाय के बगीचे हैं। इनमें पत्ति चुनती हुई पहाड़ी स्त्रियों के झुण्ड भेड़ों के समान मालूम होते थे। कभी उधर की वायु के झोंके के साथ उनके सम्मिलित राग की अस्पष्ट, कम्पिति-सी लहरी भी सुनाई पड़ जाती थी।

लोग कहते हैं—पालमपुर नन्दन कानन है। सर मालकम-हेली तो पालमपुर पर इतने रीझे कि शिमले की जगह उसी को पंजाब की गरमियों की राजधानी बना देना चाहते थे परन्तु मुझे यह सब बिलकुल नीरस जान पड़ता था।

नीचे घाटी की तलैटी में खड़की झाड़ियों में से बल खाती, कल-कल शब्द करती पानी की एक धारा बहती है। इस पानी को रोक कर जहाँ तहाँ पहाड़ी लोगों ने पनचक्कियाँ बनाली हैं। वहाँ जगह जगह बड़ी बड़ी चट्टानें पड़ी हैं। घण्टों मैं इन्हीं चट्टानों पर बैठ कर निरुद्देश्य समय गुजार दिया करता।

एक रोज तीसरे पहर यों ही एक चट्टान पर बैठा एक बगले के भक्ति भाव को देख रहा था। उस समय एक गूजर की लड़की बारह तेरह बरस की, अपनी भैंस को धार पर पानी पिलाने आई। भैंस की

चौड़ी पीठ पर वह अपने डेढ़ बरस के भाई को साधे हुए थी। वह छोकरा गूजरों का कनटोप लगाये मजे में एक पतली-सी छड़ी से 'तत-तत' कर अपनी सवारी को हाँके चला आरहा था। पानी के किनारे पहुँच गर्दन झुकाकर ज्योंही भैंस जल्दी से आगे को बढ़ी, बच्चा कद्दू सा लुढ़क कर नीचे आ गिरा।

लड़की ने घबरा कर बच्चे को उठाया परन्तु उसके सिर से खून बहता देख वह स्वयं भी चिल्लाकर रोने लगी। बच्चा कुछ सहम सा गया था परन्तु बहिन का रोना देख उसने भी मुंह पसार दिया।

लड़की ने चोट को हाथ से दबा कर खून रोकना चाहा परन्तु वह न रुका। यह देख मैं उठा। लड़की के हाथ से बच्चे को ले अपना रूमाल पानी में भिगो घाव पर दबा दिया। उसके सिर की खाल प्रायः डेढ़ इंच फट गई थी।

बच्चे को अपने ही हाथों में लिए मैं हस्पताल को लौटा। लड़की मेरे पीछे पीछे भागी चली आई। बच्चे की मैंने स्वयं मर्हम पट्टी की। वह भाग भाग कर अपनी बहिन के पास जाना चाहता था, यह देख मुझे हँसी आ गई। पट्टी बाँध अपने ही हाथों मैंने उसका मुँह धो दिया। नाक के मैल की न जाने कितनी तहें उसके गालों पर जम रही थीं। उसके मैले कुचैले कपड़े फाड़, चिर्मची में बैठा मैंने उसे साबुन से नहला दिया। उसका भूरा धब्बेदार बदन खूब गोरा गुलाबी-सा निकल आया। जब मैं तौलिये से उसका शरीर पोंछ रहा था वह मेरे हाथों में ही सोगया। वह छोकरी अपनी बड़ी बड़ी कातर आँखों से निरन्तर मेरी ओर देखती रही।

उस सुन्दर सुडौल बच्चे के प्रति मन में एक प्रकार का मोह या ममता-सी पैदा होगई। उसे तौलिये में लपेट मेज़ पर सुला मैंने लड़की की ओर देखकर कहा—'बैठ जाओ।'

लड़की की आँखों से दो बूँद आँसू टपक पड़े। उसे भयभीत होते देख मैंने समीप बुलाकर उसका नाम पूछा। उसने गले में रुके हुए आँसू पीकर कहा—'नूरी'।

नूरी के मैले शरीर और कपड़ों की ओर संकेत कर मैंने कहा—'नूरी तू बहुत मैली है।'

वह इसका कुछ अर्थ न समझ अपनी कातर आँखों से मेरी ओर देखती रही। मैंने उससे फिर पूछा—'नूरी तू कभी नहाती है?'

सिर हिलाकर उसने उत्तर दिया—'नहीं।'

मैंने हँस कर पूछा—'क्यों'?"

उसने कहा—'जाड़ा लगता है।'

मैं उससे बातचीत करता रहा—उसके यहाँ कितनी भैंसें हैं? कितना दूध होता है? इत्यादि-इत्यादि। बहुत शनै शनै वह मेरी बातों का उत्तर देती थी।

कुछ देर में बच्चे ने आँखें खोल गिरगिट की तरह सिर उठा दिया। नूरी ने झट से मेज के पास पहुँच गई और बच्चे को उठा लिया। अधीर हो वह उसे चुमकारने लगी।

मैंने हाथ फैलाकर बच्चे को पुचकारा पर उसने मुँह फेर लिया।

मोह ठोकर खाकर जाग उठता है! उन बच्चों को सन्मुख से चले जाने देने की इच्छा न होती थी। इच्छा हुई उन्हें कुछ खाने को दूँ। पर वहाँ क्या रखा था? एक कागज में चीनी डाल मेज पर रख बच्चे के विरोध के बावजूद मैंने उसे बहिन की गोद से ले मेज पर बठा दिया। वह मुँह फाड़ चिल्लाने लगा। एक चुटकी चीनी मैंने उसके खुले मुँह में डाल दी। मुँह में लार भर आने से उसके लिए रोना मुश्किल हो गया। आँसू भरी आँखों से वह चीनी खाने लगा। मैंने नूरी को भी चीनी दी।

वह बड़ी व्यस्तता से उँगलियाँ चाट-चाट कर चीनी खाने लगी। आखिर लड़की को दूसरे रोज फिर बच्चे को दवाई के लिए लाने को कह मैंने उन्हें विदा कर दिया।

वह दिन और दिनों से भिन्न था। उस दिन मन में उदासी और शरीर में शिथिलता अनुभव न हुई। मैं बराण्डे में टहलतता रहा बाजार भी गया। कुछ मिठाई और फल भी खरीद लाया। दूसरे दिन कई मरीज़ों को मैंने स्वयं दवाई दी और नूरी और बच्चे की प्रतीक्षा करता रहा।

लगभग दस बजे नूरी अपने बाप के साथ बच्चे को लेकर आई। बच्चा अपने बाप के कंधे पर सवार था और एक पतली छड़ी से अपनी सवारी को हांकता चला आ रहा था। नूरी के सिर पर दूध की एक मटकी थी।

नूरी के बाप ने बड़ी दीनता से सलाम किया और पीर से मेरे जान माल की खैर की दुआ मांगी। मैंने बच्चे को पुचकारा परन्तु उसने डर कर बाप की गोद में सिर छिपा लिया।

बाप ने बच्चे की पीठ पर स्नेह से हाथ फेरकर में कहा—'बेटा मम्दू डाक्टर साहब को सलाम करो।' मम्दू और भी मचलकर बाप के गले से लिपट गया।

मेज़ के दराज़ में से एक लाल सेव निकाल कर मैंने मम्दू को दिखाया। सेव देख मम्दू दुविधा में पड़ गया। उसने मेरी ओर देखा, फिर बाप की ओर देखा, और फिर और शंकित चित्त से शनै शनै मेरी गोद में आ गया। मम्दू का ड्रेसिंग (मरहम पट्टी) मैंने खुद ही किया। उसका रोना और ठुनकना मुझे बहुत भला मालूम होता था। बाज़ार से लाई हुई मिठाई मैंने दोनों को खाने को दी। घण्टे भर बाद वे लोग

चले गये। गूजर को मैं प्रायः साबुन देता रहता था। बच्चे भी मिठाई के लोभ से नहाना स्वीकार कर लेते थे।

नूरी और मम्दू काफी साफ़ सुथरे नित्य सुबह मेरे लिए दूध का बर्तन लेकर आते और शाम को लौटा ले जाते। आहिस्ता-आहिस्ता दूसरे बच्चे भी आने लगे। नित्य तीसरे पहर प्रायः आठ दस बच्चे मुझे घेर लेते। चांय-चांय कांय-कांय मच जाती। प्रायः डेढ़-दो घण्टे इसी में बीत जाते। अब डेक चेयर पर बैठकर मैं शून्य दृष्टि से हिम शृंगों को नहीं देखता रहता था। नीचे धार पर गये भी कई-कई दिन बीत जाते थे।

ईद पर मैंने नूरी और मम्दू के लिए कपड़े सिलवाये। नूरी की दुबली-पतली देह काली रेशम के तंग पायेजामे, गुलाबी कुरते, और पीली चुनरिया में फूलों पर मण्डराती हुई तितली जैसी जान पड़ती थी। मम्दू रंगीन फुटबाल सा लुढ़कता फिरता था। दूर से ही उन्हें आते देख मैं हाथ फैला देता। नूरी दौड़कर मेरी बाहों में आ जाती और मम्दू घुटनों से चिपट कर उछलने लगता। कभी-कभी नूरी घर से मिट्टी के प्याले में खीर ले आती और मुझे उसे खाने के लिए विवश करती।

नूरी को मैं 'बिट्टी नूरी' कह कर पुकारता था। उसकी बात मैं टाल न पाता। मम्दू बुद्धू था और शैतान भी। कभी यह तोड़ता कभी वह फोड़ता। परन्तु नूरी अपने भोलेपन में चिंता और करुणा का पुट लिए रहती थी। मैं झूठमूठ आँखें बन्द कर लेता। नूरी पूछती—'क्या हुआ?'

मैं कह देता—'सिर दुखता है।'

वह अकुलता से अपने हाथों मेरा सिर दबाने लगती। मैं हँस पड़ता तो वह झेंप कर आँखें मूँद लेती। मैं उसका सिर चूम लेता।

मम्दू मिठाई लेकर चम्पत हो जाता परन्तु नूरी घण्टों मेरी कुर्सी

के पास बैठी रहती। कभी घास के तिनके ले खिलौने की टोकरियाँ बनाती, कभी अपनी गुड़िया सजाती, कभी मुझे पहाड़ी गीत सुनाती। वह पहाड़ी गीत, "गोरियेदा मन लगया चम्बेदिया धारा······" उसे खूब याद था। वह एक बरस कैसे गुज़र गया कुछ मालूम न हुआ।

एक दिन तीसरे पहर गूजर आकर मेरी कुर्सी के समीप जमीन पर बैठ गया। भूमिका बांधकर उसने कहा—'गिराली' ग्राम में वह अपनी एक भैंस का सौदा करने गया था। महीने भर में नूरी का ब्याह उसे कर देना है। उसी के खर्च के लिए वह भैंस बेचने को मजबूर हुआ है।

मैंने गूजर से कहा—'नूरी तो अभी बच्ची है, उसके ब्याह की इतनी जल्दी क्या ?

गूजर ने कहा—"समधी तो नहीं मानता। बरस भर हुआ उसकी गूजरी बुख़ार से मर गई। घर में काम काज के लिए कोई औरत नहीं, वह कैसे मानेगा ?

ब्याह के खर्च की बात चली। गूजर ने बताया बिरादरी को दो भात देने ही होंगे—एक मीठा और एक नमकीन। पीर दरया की दरगाह पर चादर भी चढ़ानी ही होगी। लड़की के लिए दो एक चीज़ चाँदी की घड़ाना ज़रूरी है। साठ सत्तर से कम खर्च नहीं होगा।

मन में सोचा कि हमारी नूरी का ब्याह है मन में एक प्रकार की उमंग सी अनुभव हुई। नूरी दूर चली जायगी, इस ख़याल से कुछ दुख भी हुआ। भैंस बेचने के लिए मैंने गूजर को मना कर दिया। उस मास का वेतन तहसील से मुझे दो ही चार दिन पहिले मिला था। सौ रुपये लाकर मैंने गूजर को गिन दिये और कहा—'नूरी जैसी तुम्हारी बेटी वैसी हमारी बेटी। ब्याह खूब धूमधाम से हो। अच्छे गहने कपड़े बन-

वाना।' गूजर पागल की तरह मेरे पैरों से लिपट गया। उससे पीछा छुड़ाना मुश्किल हो गया।

नूरी के लिए और उसके दुल्हे के लिए एक-एक जोड़ा कपड़े मैंने खुद भी बनवा दिये। व्याह से कुछ दिन पहिले नूरी आकर मेरी कुर्सी से पीठ सटाकर बैठ जाती। मैं अपना हाथ उसके सिर पर रख देता।

गोरखा चौकीदार की स्त्री से उसने अपनी तमाम बुद्धि व्यय कर मोजा बुनना सीखा था। देसी ऊन का एक जोड़ा खूब मोटा मोजा उसने अपने हाथ से कई दिन में बुनकर तैयार किया और अपने ही हाथों उसे मेरे पैरों में पहना उसने अभिमान और सन्तोष से मेरी ओर देखा। गदगद हो उसे गोद में उठा मैंने चूम लिया।

मैंने कहा—'नूरी अब तू सुसराल चली जायगी फिर मैं तुझे कैसे प्यार करूँगा ?'

नूरी ने अपना सिर मेरी छाती पर झुका दिया। जब मेरी कमीज़ भीग गई तो मैंने उसका सिर उठा कर देखा—वह रो रही थी।

हँसकर मैंने कहा—'अरे पगली लड़की तू तो रो रही है।' वह लजा कर भाग गई।

नूरी का व्याह खूब धूमधाम से हुआ, खूब झांझ-तासे बजे। मैंने घर बैठ कर ही उन्हें सुना। मम्दू को साथ लेकर नूरी की माँ परात भर भात मेरे लिए दे गई।

व्याह हो गया और नूरी का दूल्हा उसे लेकर चला गया। व्याह का झंझट समाप्त कर नूरी का बाप सलाम करने आया। उसने कहा—तीन दिन बाद नूरी का दुल्हा उसे लौटाने आयगा तो वह लड़की को कम से कम महीना भर घर टिकायेगा।'

तीन दिन उदासी में कटे। मम्दू आता, दो-चार बात तोतली बोली

में बोल मिठाई ले चम्पत हो जाता। तीसरे दिन धूप ढलने लगी थी। मैं बरामदे में बैठा ट्रिब्यून के पृष्ठ पलट रहा था। दूर से मम्दू चीखता हुआ सुनाई दिया—'लूरी आई, बेबे आई, लूरी आई बेबे आई।'

बाहिर निकल मैंने देखा, नूरी रंग-बिरंगे कपड़े पहने छमछम करती चली आ रही है और उसके पीछे मम्दू भी लुड़कता हुआ चला आ रहा है। जैसे बछड़े को देखकर गाय रंभा कर दौड़ती है वैसे ही मैं भी उसकी ओर दौड़ा और उसे अपनी बाहों में लिपटा लिया। दो घंटे तक नूरी मुझे अपने सुसराल की बात सुनाती रही फिर मम्दू को लेकर चली गई। मैंने कहा—'कल सुबह ही आना। उसने सिर झुका कर कहा—'हाँ' !

दूसरे दिन सुबह गूजर की चीख पुकार से मेरी नींद खुली। मैंने पूछा—'हुआ क्या ?'

दोनों हाथों से सर पीट वह धम से फर्श पर गिर पड़ा—'मैं बरबाद हो गया, डाक्टर साहब बचाओ !'—उसने रोकर कहा।

आशंका से मेराहृदय घबरा उठा। मेरे फिर पूछने पर उसने बताया—'कल नूरी यहाँ आई थी, इस बात से उसका दूल्हा नाराज़ होगया। रात में हंसिये से उसने नूरी की नाक काट ली'।

एक दफ़े अपने कानों का विश्वास न कर मैं बिस्तर से उछल पड़ा। गूजर के दोबारा वही बात दोहराने पर तावड़तोड़ सर्जरी का बेग लेकर मैं गूजर के घर पर पहुँचा। सब लोग रो रहे थे दूल्हा भाग गया था।

नूरी की खटिया के तमाम कपड़े लहू से तर थे और वह बेसुध पड़ी थी। मैंने उसकी नाड़ी देखी, हृदय की गति देखी, मुझे मालूम न हो सका कि अभी जीवन शेष है या नहीं। मैंने तुरंत सीने पर सूई लगादी और फिर ध्यान से जीवन के चिन्ह देखने लगा। कोई चिन्ह न था।

मैं मूक भाव से नूरी के शव को देखता रहा। फिर घर लौटकर लेट रहा।

कम्पाउण्डर ने आकर कहा—'तहसीलदार साहिब याद फर्माते हैं। मैंने हाथ हिलाकर उसे बाहिर चले जाने का इशारा कर दिया। नौकर आता और झांक कर चला जाता। तीसरे पहर आकर बच्चों ने हस्ब-मामूल शोर मचाया, पर मुझसे उठा न गया। पाँच दिन तक यही हालत रही। छठे दिन बिस्तर बाँध मैं लाहौर लौट आया।

तुम कहते हो—'मैं मौत को बुला रहा हूँ। मैं कहता हूँ मौत आती कहाँ है? वह मुझसे नफ़रत करती है!'

× × ×

डा० प्रताप की इच्छा न होने पर भी मैंने उसे हृदय रोग के विशेषज्ञ डा० सूरी को दिखाया। पर उसने कोई दवाई न ली। इसी से कहता हूँ, प्रताप से मृत्यु हार गई थी, यमराज परास्त हो गये थे। हाँ, उपनिषदों में ज़रूर इस उपाय का उपदेश नहीं है।

मृत्यु के पश्चात उसके तकिये के नीचे से अनघड़ हाथों का बुना हुआ एक जोड़ा ऊनी मोजा निकला। प्रताप की स्मृति में यह जोड़ा रख लेने की इच्छा हुई, लेकिन कुछ सोच कर, चिता में उसके सिर के नीचे यह जोड़ा भी रख देना उचित समझा।

शर्त !

पूस का महीना, बादल घिरी साँझ, रिसरिसकर पानी बरस रहा था, खूब जाड़ा था। ऐसे समय कोई आदमी घर छोड़कर मेरे यहाँ आयगा, ऐसी आशा नहीं थी। मैं एक बंगाली उपन्यास-निरुपमा देवीका-लिये अंगीठी के सामने आराम कुर्सी पर बैठ, सामने दूसरी कुर्सी पर पैर टिकाये पढ़ रहा था। घने बादलों के कारण अँधेरा हो जाने से सरे शाम से ही बिजली जल रही थी।

मैं उपन्यास में तन्मय था। कमरे में कोई कब घुस आया, यह मुझे जान नहीं पड़ा। परन्तु जब पैरों के नीचे से कुर्सी खींच लिये जाने पर पैर धम से नीचे जा गिरे, तब किताब से नज़र उठा कर देखा कि सामने की कुर्सी पर सन्तू बैठा है।

सन्तू का मेरे यहाँ आने का कोई समय असमय नहीं था। लेकिन इस जाड़े के मेह में और फिर बुलाये चुलाये बिना उसका यों धम से कुर्सी पर गिर पड़ना !

मैं चुपचाप पलभर उसकी ओर देखता रहा। सन्तू की नजर अंगीठी की तरफ थी। हाथ के सिगरेट से एक खूब लम्बा कश खींचकर उसने सिगरेट के टुकड़े को अँगीठी में फेंक दिया। उसकी दृष्टि अब भी उसी ओर थी। सिगरेट के उस टुकड़े से धुआ उठा, लौ उठी और वह समाप्त हो गया। अन्त में मुझे ही वह चुप्पी तोड़नी पड़ी। उसे सचेत करने के लिए मैंने पूछा—"क्यों ?"

जेब से रुमाल निकालकर मुख और बालों पर पड़ी मेह की बूंदे पोंछते हुए उसने दीर्घ उसास लेकर कहा—"हूँ"—और फिर गुम हो रहा।

उत्सुकता से मैंने पूछा—"क्यों, क्या बात है ?"

बेचैनी से पैर पटक मेरी ओर देखकर उसने खिन्न स्वर में कहा—"क्या यार, दुनिया का कुछ पता नहीं।"

हाथ की किताब मूँदते हुए मैंने फिर दुहराया—"क्यों, क्या बात है ?"

"हूँ,"—कह और भी अधिक एक लम्बी साँस उसने खींची और खिन्नता से मुस्कराने की चेष्टा कर उसने मुँह फेर लिया।

अवश्य ही कोई असाधारण घटना घट गई है, जिसे मुख तक लाने में सन्तू एक आरम्भ की खोज में है—मैंने सोचा। इसलिए फिर मैंने सहारा दिया—"सीधे घर से ही आ रहे हो क्या ?"

इन्कार से सिर हिलाते हुए उसने कहा—"क्या बताऊँ.........इन औरतों का कुछ विश्वास नहीं !"

औरतों का नाम सुनते ही मेरा कौतूहल विशेष जग उठा। ज़रा बन कर मैंने कहा—"रवीन्द्रनाथ ने भी तो कहा है, स्त्री के मन का भेद त्रिलोक में कोई नहीं भांप सकता।"

सन्तू छूटते ही बोला—"बिलकुल ठीक। मैं तो पहले से जानता था और तुझसे छिपा नहीं कि मैं लड़कियों से ज्यादा मेल-जोल नहीं रखता। मेरा तो वही उसूल है—दूर-दूर। लेकिन आज तेरे सामने सिद्ध कर दूँगा कि तू जो उस पद्मा को दूध की धुली देवी कहता है,.........आज मैं सब जान गया हूँ। स्वयं आँखों से देख आया हूँ और एलानिया कहता हूँ.........मैंने पहले भी कई दफे तुझसे कह दिया है, वह बड़ी छलीसी है, उसकी जड़ें पाताल में हैं; लेकिन तू नहीं मानता था।"

मुझे याद नहीं, कभी सन्तू ने यह सब इतने ज़ोर से कहा हो परन्तु

उसकी बात को मैंने काटा नहीं। वह कहता गया—"यह जितनी चिकनी चुपड़ी देवियाँ बनी रहती हैं, इन सबके पोल हैं और मैं साबित कर सकता············हूँ।"

"क्या हुआ ?"—मैंने व्यग्रता से फिर पूछा।

सन्तू उसी स्वर में कहने लगा—"मैं पहले ही कहता था, नारायण जो मदन के घर में यों आता-जाता है, उसे देखते ही जो पद्मा उछलकर बाहर आ फुदकने लगती है, उसका कुछ मतलब है। वह हाथ मिलाना मेरी समझ में नहीं आता! हाथ मिलाने की क्या जरूरत ? मुझसे भी हाथ मिलाने लगती है वह·········निर्लज्जता की भी एक हद होनी चाहिए। मैं तो दूर से ही हाथ जोड़ देता हूँ। नारायण प्रायः हर रोज मदन के यहाँ जाता है, और ऐसे समय, जब मदन घर पर न हो।

मैं ऐसे समय कभी नहीं जाता; परन्तु उसे वहाँ सदा ऐसे ही समय देखता हूँ। कोई मर्द उसके घर आये, वह कूद-कूदकर उसके आगे पीछे नाचने लगेगी, बिलकुल कुत्तियों की तरह।"

सन्तू का क्रोध और ग्लानि देखकर मुझे निश्चय हो गया कि आज अवश्य ही कुछ अघट घटना हो गई है। सन्तू ने साँस लेकर फिर कहना आरम्भ किया—"मैं कहता हूँ, इस बनाव-सिंगार और टीम-टाम की जरूरत ही क्या ? यह फँसाने की चालें नहीं तो क्या है ? इसीलिये मैं उससे कभी बोलता नहीं। दूर ही से हाथ जोड़कर कह देता हूँ—'देवी तू दूर ही रह।'

लेकिन उसे तो चाऊँ-माऊँ करने की आदत है। वह समझती है सभी एक जैसे हैं। पर यहाँ क्या रखा है ? नारायण तो मैं हूँ नहीं, जो 'पार्कर' का कलम ला दूँ, दिवाली के दिन चाकलेटों के डिब्बे भेंट करूँ; नरगिस के फूलों के गुलदस्ते, रेशमी रूमाल और उपन्यास ला दूँ। यहाँ एक पैसे

के दिवाल नहीं । मैं जाता हूँ मदन से मिलने और वह समझती है कि मै उसके लिए आया हूँ ।

"मैं अभी इधर आते-आते रास्ते में मदन से मिलने गया था । मदन था नहीं, मैं लौटने लगा । झट सामने आ खड़ी हुई । कहने लगी–'आइए बैठिए, मदन भाई अभी आ जायँगे ।'

"मुझे बेबस बैठना पड़ा । लगी उल्लू की तरह झप-झप मेरा मुँह ताकने । मुझे बहुत बुरा मालूम हुआ । मैंने ऐसे ही पूछा—'आप क्या कररही थीं ।'

"जवाब मिला—'ऐसे ही एक किताब देख रही थी ।' मैंने पूछा—'कौनसी किताब ?' तो आंखें मटकाकर बोली—'ऐसे ही एक कविता की पुस्तक थी ।'

"यह तो मैं ताड़ गया कि पुस्तक जरूर नारायण का उपहार है; परन्तु ऐसे ही बनकर मैंने कहा—'अच्छा दिखाओ तो, कौन-सी पुस्तक है ?'

"लगी टालने । आखिर भीतर गई । चुड़ैल ने क्या किया, कविता की वह पुस्तक 'तारे', जो एक दफ़े मदन का मन रखने के लिए मैंने उसे भेंट कर दी थी, उठा लाई । मैं भला इस छलछन्द में आनेवाला हूँ ? मैंने पुस्तक देखने के लिए माँगी, तो इधर-उधर करने लगी । एक ही कुट्टनी है । लगी हाव-भाव दिखाने, पर इस बालू में तेल कहाँ ?

"जब वह पुस्तक छिपाने लगी, तो मैं भी भाँप गया कि जरूर दाल में कुछ काला है ।

"मैंने फिर पुस्तक देने के लिए कहा । कहने लगी—'क्या कीजियेगा, आप ही की तो है ।'

"मैंने कहा—'एक कविता दिखाऊँगा ।'

उसने पुस्तक में से पासपोर्ट साइज़ का एक फोटो निकाल कर छिपा लिया और किताब मेरे हाथ मे दे दी ।

"मैं अन्धा तो हूँ नहीं। बात की हदतक पहुँचाने के लिए मैंने कहा—ज़रा वह फोटो तो दिखाइये। फोटो भला कैसे दिखाती, सब भेद खुल न जाता? मैं जानता हूँ फोटो नारायण का है। यदि मदन का होता तो छिपाने की क्या ज़रूरत थी?

"मैंने हाथ बढ़ाकर फोटो ले लेना चाहा। वह लगी इधर-उधर मटकने। कभी पीठ के पीछे छिपाती, कभी इधर, कभी उधर। मैंने सहज भाव से हाथ पकड़ने की कोशिश की परन्तु वह तो चाहती थी हाथा-पाई करना और यह मेरे बस का नहीं। इतने में नारायण ने पुकारा मैं जान छुड़ा कर भागा।

"यह मैं दावे से कह सकता हूँ कि वह फोटो नारायण का था। उपहार के बाद फोटो की नौबत पहुँची है और अब उसे छिपाने की भी ज़रूरत पड़ने लगी। कभी देखा नहीं, कैसे बढ़-बढ़कर हाथ मिलाती है?"

इतना कहकर सन्तू फिर अंगीठी के कोयलों की ओर देखने लगा। उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकल रहीं थी। दर असल उसे इतना क्रोध ही था या अंगीठी की झलक से वैसा मालूम पड़ रहा था, यह निश्चय से नहीं कह सकता। मैंने कुर्सी पर करवट बदलते हुए कहा—"तो फोटो दिखाया नहीं।"

उसने तिनक कर कहा—"फोटो नारायण का है। मैं इस बात पर जो शर्त चाहो, बदने को तैयार हूँ और अगर इस बात का भण्डाफोड़ मैंने न कर दिया तो मेरा नाम सन्तकुमार नहीं। मैं कहता हूँ—'आदमी ब्याह कर ले, झगड़ा खतम हुआ। बाहर और, भीतर और—यह कुल्टाओं की-सी चालें क्यों? यह सब जाल नारायण के रुपये के लिए हैं।"

बात मेरी समझ में आगई। मैंने कहा—"नारायण रुपये वाला है,

इसमें शक नहीं। देखने-सुनने में भी अच्छा है। उसे कौन लड़की नहीं चाहेगी।"

सन्तू तड़प कर बोला—"कुछ नहीं, सब रुपये का लोभ है। मैं सब जानता हूँ। और देखना, मैं सब दिखा दूँगा।"

कुछ देर लड़कियों के अत्याचार की विवेचनाकर, कुँवारों की दयनीय दशा के प्रति हम लोग क्षुब्ध रहे। उसके बाद मैंने कहा—"यार सन्तू, तू चालाक तो बहुत है; परन्तु एक काम करे तो जानूँ।"

तिर्छी नजर से मेरी ओर देखकर उसने कहा—"क्या ?"

"वह फोटो अगर तू निकाल लाये तब तेरी बहादुरी है!"—मैंने कहा।

इस बात का सीधा कोई उत्तर न दे सन्तू ने कहा—"मैं शर्त बदकर कहता हूँ, वह फोटो नारायण का है और रुपये के लिए ही वह नारायण पर फन्दा डाल रही है। परन्तु ऐसी लड़की से.........लेकिन नारायण भी गधा है। वह बिलकुल अन्धों की तरह उसके गोरे चमड़े पर मर रहा है।"

"सो तो है"—मैंने कहा—"परन्तु बिना प्रमाण के मजा नहीं। रँगे हाथों ले, तब बात है।"

आखिर यह जाल रचा गया—सन्तू पद्मा के यहाँ रोज न सही, दूसरे-तीसरे जाता ही है। वहाँ उसे घर के आदमी की तरह पूरी स्वतंत्रता है। सन्तू कल उनके यहाँ जाकर अपनी एक पुस्तक भूल आये और फिर ऐसे समय जब मदन और पद्मा में कोई घरपर न हो, सन्तू वहाँ जाकर मदन की माँ या अन्य किसी व्यक्ति से कहकर अपनी पुस्तक लेने के बहाने पद्मा की पुस्तकों की आलमारी से वह पुस्तक 'तारे', जिसमें नारायण का फोटो पद्मा ने छिपाकर रखा है, उठा लाये। इसके पश्चात् फिर देखा जायगा।

जोड़-तोड़ लगाकर देखने से जान पड़ा कि ऐसा स्वर्ण सुयोग सन्तू को बुधवार तीसरे पहर से पहले नहीं लग सकता। उस समय पन्ना का 'स्त्री-बुध सभा' में जाना निश्चय था और मदन कैमिस्ट्री क्लास छोड़ नहीं सकता था।

× × ×

मैं प्रतीक्षा में बैठा था। सन्तू की बाईसिकिल की घंटी का शब्द सुनाई दिया। मैंने उचक कर देखा—मकान की कुर्सी की सीढ़ी पर एक पैर रख, सन्तू ने ब्रेक दबा, बाईसिकिल को झट से रोका और उसे गिरता-पड़ता छोड़ भीतर कूद आया।

उसके हाथ में दो पुस्तकें थीं—एक मोटी और दूसरी पतली-सी। उसके चेहरे पर विजय-गौरव झलक रहा था। उत्सुकता से उसकी ओर देखकर मैंने पूछा—"क्यों?"

वह सपाटे से साइकिल दौड़ाकर आया था, हाँपता हुआ बोला—"किताबें दोनों आलमारी से लेकर हटा ली थीं कि अचानक मदन आ पहुँचा। बड़ी कठिनता से बात बनाकर निकल पाया। अभी किताबें खोली भी कहाँ हैं।"

यह कहकर हरे रंग की मोटी-सी पुस्तक उसने फर्श पर डाल दी और कुर्सी पर बैठते हुए उस पतली-सी पुस्तक को दोनों हाथों में लेकर बोला—"अभी सब भेद खुला जाता है।"

पुस्तक को खोलते ही वह फोटोवाला पन्ना स्वयं खुल गया। मैं अत्यन्त कौतूहल से मुँहबाये उसकी ओर देख रहा था।

सन्तू उस तस्वीर को देखता रहा, मुँह से कुछ बोला नहीं। उसके मुख का भाव बदलता देख, उचककर ज्यों ही मैंने फोटो पर नजर डालना चाहा—

आश्चर्य ! सन्तू ने तसवीर को छिपा लिया ।

मैं हैरान था⋯⋯।

सन्तू की आँखों में सब-कुछ बदल गया, कनपटियाँ लाल हो गईं, माथे पर पसीना झलकने लगा। आग्रह से मैंने कहा—"दिखा यार, छिपाता क्यों है ?"

उद्वेग के कारण टूटे हुए स्वर में सन्तू ने कहा—"किसी से कहना नहीं !"

पुस्तक उसके हाथ से मैंने छीन ली। देखा, तो हैरान रह गया। फोटो सन्तू का था। और जिस कविता पर वह रखा हुआ था, उसमें 'प्यारे,⋯⋯तारे,⋯⋯हमारे,⋯⋯उजियारे', कुछ-कुछ ऐसा ही अन्त्यानुप्रास था।

कृत्रिम क्रोध से ओठ चबाते हुए मैंने कहा—"बदमाश !"

भावावेश के कारण सन्तू से कुछ कहते न बना। जब एक प्याली चाय उसके गले से नीचे उतर गई, तब चायदानी की ओर देखकर उसने कहा—"और जो हो एक बात कहूँगा—कम-से-कम उसके स्वभाव में बनावट नहीं है।'

उसकी ओर देखकर मैं चुप रह गया। उसने फिर कहा—"और उसकी सादगी देखकर पूजा करने को मन चाहता है।"

मुख की चाय के गरम घूँट को ज्यों-त्यों निगल कर मैंने कहा—"सो तो है ही।"

दूसरी प्याली समाप्त करने के पश्चात् सुस्त हो छत की ओर देख सन्तू बोला—"दरअसल There is nothihg good or bad, but thinking makes it so." (अच्छा-बुरा स्वयं कुछ नहीं है, सब समझ का खेल है।)

८

तिर्छी नज़र से उसकी ओर देखकर मैंने पूछा—"और वह शर्त ?"

सन्तू ने दाँत निकाल दिये ।

शर्त जीतने पर वह इतना प्रसन्न होता या नहीं, यह कहना कठिन है ।

तीसरी चिता—

हृदय के लिए सबसे बड़ी व्यथा, शायद, जीवन के लिये सबसे बड़ी व्याधी, शक है! दाँत का उत्कट दर्द, तपेदिक की मर्मांतक पीड़ा और दमे में दमका रुकना-दौरे के रूप में आता है, गुजर जाता है। या फिर व्यथा का मूल प्राण ही चले जाते हैं। परन्तु शक और 'अपनों'— के प्रति शक, उसके चाल चलन के सम्बन्ध में इशारेबाजी या काना फूसी इसे कौन नर शार्दूल सह सकता है? शायद सह सकते हैं या तो नर कुक्कुर या फिर देवता ही सह सकते हैं, जो आवेश, उन्मेश और अनुभूति से परे हैं। परन्तु देवताओं के सम्बन्ध में पुराणों में ऐसे आख्यान मौजूद हैं जो उन्हें इस नीचता या महत्ता से बरी कर देते हैं।

माला को जयदेव ने अशेष रूप से आराध्य समझा था। उसकी कल्पना जहाँ तक जा सकती थी उससे बहुत अधिक दूर तक माला की कमनीयता, सहृदयता और—पुरुष की दृष्टि में स्त्री का चरम सौन्दर्य, अन्यतम गुण-सतीत्व व्यापक था। जयदेव का मस्तिष्क और आत्मा एक निर्विकार आनन्द के जगत में खो गये थे। उस जगह का प्रत्येक रूप या चिन्ह था—माला का मुग्धकर रूप।

लेकिन यह रंग बहुत दिन तक न ठहर सका। अब उसका मन घृणा से उद्विग्न और घर से विरक्त था। जासूसी करके सुबूत ढूँढ़ने जाना उसके आत्म-अभिमान के लिए असह्य था। एक समय पुरुष असति नारी और उसके प्रेम-पात्र के रक्त से अपने पौरुष के अपमान का कलंक धो दिया

करते थे या कलंकिनी को कमर तक गड़वाकर कुत्तों से नुचवा देते थे। उस समय यही न्याय था, यही मर्यादा थी, परन्तु समय के साथ न्याय और मर्यादा का आदर्श भी बदल जाता है।

स्त्री के प्रति तिर्छी नज़र से देखना या उसे धमकाना आज का पुरुषता का लक्षण है। रोजमर्रा की जलन से बचने के लिये अलबत्ता ऐसी स्त्री को अलग कर दिया जा सकता है परन्तु वह सिर दर्द के लिये मूँड काटने का-सा इलाज है। अपनी अयोग्यता अपने अपौरुष का ढिंडोरा पीटना है।

और फिर वह अपमान भी कैसा? पति के स्वयम व्यभिचारी होने पर भी भद्र समाज में उसके लिये गुँजाइश है परन्तु जिसकी स्त्री असति है उसके लिये भद्र समाज क्या समाज के निचले से निचले तपके में भी स्थान नहीं। कोढ़ी से भी अधिक अछूत और भ्रूणघातक से भी अधिक जघन्य वह व्यक्ति है। अपने आपको यों हेय उद्घोषित करने की अपेक्षा, अपने हृत्पिण्ड में स्वयम दाँत गड़ाकर समाप्त हो जाना आसान है।

भीतर इतना भयंकर ध्वंस और भूकम्प आजाने पर भी जयदेव के जीवन में प्रत्यक्ष अन्तर केवल इतना ही था कि वह अब पहिले की अपेक्षा अधिक चिन्ताशील और चुप जान पड़ता था। जिन लोगों के कान तक अपवाद की सुरसुराहट नहीं पहुँची थी उन लोगों का खयाल था कि आयु के बढ़ने और कारोबार के बंधन में फँसने से मनुष्य स्वाभावतः गम्भीर हो जाता है।

इसके अतिरिक्त जहाँ तक घर के भीतर का सवाल था दोनों में परस्पर आकर्षण का कोई चिन्ह शेष न था। प्रेमालाप, सलाह मशविरा, एक साथ खाना, उठना, बैठना सब समाप्त हो चुका था। आने जानेवाले लोगों के सन्मुख वह माला से किसी प्रकार का खिचाव प्रकट न होने देने के लिए विवश था।

माला इस सर्द मोहरी को उपेक्षा और अन्याय समझती थी। पर उसे सह जाने के अतिरिक्त उपाय नहीं था। यदि किसी दिन जयदेव उस पर असतित्व का अभियोग लगाने का साहस करता तो माला चुप रह कर केवल अपने रक्त से उस कलंक को धो डालती। जयदेव ऐसा साहस कभी कर न सका, कायरता से हो या औचित्य के विचार से हो। माला घर पर मुर्झाये हुए बासी गुलाब की सी रहती। दिल के बोझ को हलका करने का केवल एक ही उपाय था, वह सखी सहेलियों में जाकर दिल बहलाने का यत्न करती।

२

मई का महीना था, नौ तारीख थी। रात प्रायः तीन पहर बीत चुकी थी। जयदेव ऊपर तीसरी मंजिल की छत पर सो रहा था। माला का पलंग नीचे खुले आँगन में मौसी के पास था। समीप एक स्टूल पर बिजली का पंखा रखा था जो बन्द हो गया था। गरमी अधिक मालूम होने से मौसी की नींद उचट गई। कुछ अप्रिय गन्ध और चटकने कड़कने का शब्द सुनकर मौसी ने नज़र उठाकर देखा, जीने की और दूसरी मंजिल की खिड़कियों से आग की लपटें और धुएँ के बादल उठ रहे थे। मौसी की चीख निकल गई। माला उठ खड़ी हुई। नौकर को पुकारा गया शोर मच गया। लोग इकट्ठे हो गये। पानी की बाल्टियाँ, गागरें, और घड़े आग की ओर फेंके जाने लगे।

पुकार सुनकर जयदेव उठ खड़ा हुआ। उसे तुरन्त नीचे आ जाने के लिये कहा गया। जीने की कुछ ही सीढ़िया उतर कर वह ऊपर लौट गया। जीने की छत और सीढ़ियों में सब जगह लकड़ी ही लगी होने से जीना बिलकुल ज्वाला भय हो रहा था। ऊपर से नीचे उतर आना संभव न था। मकान के दोनों ओर गली, सामने सड़क और पीछे केवल एक

मंजिला मकान होने से किसी दूसरे मकान के रास्ते उतर आना भी संभव न था। लम्बी सीढ़ी आस पास कहीं न थी और इस जमाने में लाहौर जैसे शहर में जहाँ घर-घर नल लगे हों, बिना जरूरत लम्बी रस्सी भी कोई क्यों रखेगा ?

भय-त्रस्त लोग तमाशा देख रहे थे। झटपट तीन-चार पगड़ियाँ और साड़ियाँ बाँधकर रस्सियाँ तैयार हो गई परन्तु रस्सी को तिमंजले की छत तक पहुँचाने का उपाय न था। यदि जीने से ऊपर जाना सम्भव होता तो जयदेव ही नीचे उतर आ सकता था। जवानी के जोश में नौकर पगड़ियों की बनी रस्सी लेकर कुछ सीढ़ियें चढ़ा—पर लौट आया। दो तीन और नौ जवानों ने भी आजमाइश की पर मुँह की खाकर लौट आये। आग बुझाने के इंजन को टैलीफोन पर टैलीफोन किया जा रहा था। परन्तु वह भी अभीतक पहुँच नहीं पाया था।

किसी से कुछ न कह साड़ियाँ जोड़ कर बनाई हुई एक रस्सी को ले माला झपटकर जीने की ओर चली। उसे रोकने के लिये लोग आगे बढ़े—इतने में वह धुएँ के घने बादल में छिप गई।

आशा निराशा की लहरों पर उतराते हुए लोग मुँह बाये ऊपर की ओर देख रहे थे। किसी ने मुँह से कुछ न कहा पर सभी समझ रहे थे कि एक की बजाय दो जानें गई। जितनी देर में साहस कर ऊपर जाने वाले लौट आये थे उससे चौगुनी देर हो गई परन्तु माला न लौटी।

बहुत ऊँचे स्वर में अपनी घंटी बजाते हुए फ़ायर-ब्रिगेड आ पहुँचा। फ़ायर-ब्रिगेड ने आते ही अपनी सीढ़ी लगा जयदेव को नीचे उतारा और जल की डबल पिचकारियों से मकान को नहला दिया। आँगन राख कोयले और अधजले लकड़ी के टुकड़ों से भर गया। जीने में एक स्त्री के होने की सूचना के कारण फ़ायर-ब्रिगेड ने और भी जल्दी की परन्तु

वहाँ से शरीर के एक जले हुए अंश के अतिरिक्त और कुछ न मिला।

३

अपने जले मकान को छोड़ जयदेव एक पड़ोसी सज्जन के यहाँ ज़रूरी सामान लेकर ठहर गया। माला के अवशिष्ट शारीरिक चिन्हों के प्रति अपने कर्तव्य को पूरा करते समय शोक और अभिमान के मिश्रण ने उसे एक नशे की सी हालत में कर दिया। इस युग में माला के यों सती हो जाने से जयदेव के प्रति लोगों की श्रद्धा और सहानुभूति का ज्वार उमड़ पड़ा। सहानुभूति प्रकट करने वालों का अन्त नहीं था। जिन लोगों ने माला के आचरण के सम्बन्ध में कनखियों से इशारे कर गन्द फैलाया था, वे उन सब बातों को ऐसे भूल गये मानो वह प्रसंग कभी था ही नहीं।

शारीरिकरूप से जयदेव के जीवन से लुप्त होकर माला ने उस पर और भी अधिक व्यापक प्रभुत्व पा लिया। वह दिवंगत माला प्रथम प्रणय की माला की अपेक्षा भी कहीं अधिक······कहीं अधिक······हो गई। उसे सूझ न पड़ता था माला के बिना वह किस प्रकार जीवित रह सकेगा?

उसका हृदय शून्य हो गया था। जो कुछ अनुभूति शेष थी उस से, जिस सम्मान की पात्र माला थी, उसे अपने सिर पर ओढ़ाया जाता देख उसका मन लज्जा से दबा जा रहा था। उपेक्षा का जो व्यवहार उसने माला के प्रति किया था उसकी स्मृति से कलेजे को फाड़ डालने की इच्छा होती थी। माला के अभाव में संसार में जीवित रहना उसे घोर विश्वासघात और महापाप मालूम हो रहा था। वह अपनी दृष्टि में संसार का सबसे नीच और जघन्य व्यक्ति हो रहा था।

मेज पर फ्रेम में माला की एक फोटो खड़ी थी। उसके सन्मुख कुछ काग़ज़ पड़े थे। जयदेव ने नेत्र मूंद कर अपना सिर माला के चरणों में

रख दिया। कितनी देर तक वह यों बैठा रहा इसकी उसे कुछ खबर न थी। उसकी आँखों से बहुत सा जल मेज पर एकत्र हो बिजली के प्रकाश में चमक रहा था उसी में माला की तसवीर भी प्रतिबिम्बित हो रही थी। उसे अनुभव हो रहा था आकाश में बैठी माला उसके आसुओं को देखकर मुस्करा रही है। जिस समय उसने सिर उठाया उस समय भी उसकी पलकों से आँसू टपक रहे थे। उस एकान्त में उन्हें पोंछने की ज़रूरत नहीं थी, उन्हें पोंछा भी नहीं जा सकता था।

रात के साढ़े तीन बज चुके थे पर नींद का कहीं पता न था। शरीर थकावट से चूर था इसलिये वह शरीर को सीधा करने के लिये पलंग की ओर झुका। तीन दिन से उसने अपनी कोई चिट्ठी पत्री नहीं खोली थी। मकान में आग लग जाने के दिन से चौदह चिट्ठियाँ जमा हो गई थीं। इतने समय में उसे समवेदना के इतने तार मिले और बैठने आने वालों ने उसे इतना अधिक घेर रखा कि चिट्ठियों की ओर ध्यान देने का समय ही न था। लेट कर वह उन लिफाफों को देखने लगा।

पहिला लिफ़ाफ़ा माला के लिये था—'श्रीमती माला देवी, राणा गली,लाहौर।' बांई ओर कोने में भेजनेवाले का नाम लिखा था—'लिलि'।

आरम्भ में माला और जयदेव को जो पत्र आते थे,उन्हें दोनों मिलकर साथ-साथ पढ़ते थे। जयदेव के पत्र माला और माला के पत्र जयदेव ज़रूर पढ़ता था। उस समय वे एक प्राण दो शरीर थे। परन्तु बरस भर से वे अदृष्य सीमाओं से बन्ध कर अलग-अलग हो गये थे। जहाँ बात-चीत न हो, वहाँ एक दूसरे के पत्र पढ़ने का सवाल ही क्या ? यदि दूसरे का पत्र हाथ में पड़ जाता तो नौकर के हाथ तुरंत भेज दिया जाता।

आज माला के अभाव में उसके नाम का पत्र पा जयदेव की आँखों के सामने पिछली बातें फिर गईं। आज इस पत्र को बिना पढ़े ही वह

किस के पास भेज सकता था ? उसने मोहर देखी । लिफ़ाफ़ा नौ तारीख को हीरा मण्डी से पोस्ट किया गया था और दस तारीख को सुबह डाकिया मकान जल जाने के बाद उसे दे गया था ।

माला की इस सहेली लिलि को वह क्या उत्तर देगा ? बहुत स्नेहार्द्र भाव से उसने लिफ़ाफ़ा खोला । पत्र में लिखा था—

"मेरी मलका ! चुम्बन, कल जैसा दिन दुश्मन की किस्मत में भी न आये । कितने अरमान से मैं नैना के यहाँ गया था और विशाद का कैसा बोझ लेकर मकान को लौटा । सिवाय नमस्ते और कुशल पूछने के मैं एक शब्द भी तुम से न कह सका । नैना के यहाँ चाय खतम कर तुम्हें साथ लेजाकर जरा घूम आने के लिये एक मित्र से कार माँग लाया था परन्तु विभा तुम्हें बरजोरी साथ पकड़कर ले गई । उस समय जो विवश दृष्टि तुमने मेरी ओर डाली, वह अब तक मेरे हृदय में बाण के समान साल रही है । कल तुम अवश्य-अवश्य शाम को पाँच बजे विभा के यहाँ आना, यदि तुम न आओगी तो मुझे तुम्हारे यहाँ आना ही होगा और उसमें कुसूर होगा तुम्हारा—मनन"

उसका शोक विद्ध हृदय अवसन्न रह गया । इससे किसी हलकी चोट को वह अनुभव ही न कर सकता था । लेकिन इस चोट ने उसे फिर एक दफ़े विवेक के लायक बना दिया । उसके लिये माला के अपने प्राण दे देने की बात उसके सन्मुख थी और उसके साथ ही अपवाद और असतित्व का यह अकाट्य प्रमाण उसके हाथ में मौजूद था ।

"तो क्या मुझे प्राण-पन से प्यार करती हुई वह भी दूसरे के प्रति अनुरक्त थी ? उसने अपने प्राण मेरे लिये प्रेम से नहीं बल्कि कर्तव्य समझ कर दे दिये ?"—जय का सिर चकरा रहा था ।

इस उधेड़ बुन में उसकी संज्ञा और अनुभूति भावुकता से हट कर

विवेक की ओर चली गई। वह जो माला की मृत्यु से जीवन को असंभव समझ रहा था, वह भाव उसके मन से दूर हो गया। फिर ख़याल आया—माला के हृदय में उसके प्रति अनुराग की जो कमी हो गई थी उसका कारण शायद उसकी अपनी ही न्यूनता थी। माला ने उसके प्रति अशिष्ट व्यवहार कुछ नहीं किया हाँ मनन के प्रति माला के अनुराग से उसका अपमान अवश्य था।

दोनों हाथ सिर के नीचे रखे वह नेत्रों को निर्निमेश खोले पड़ा था। उसे मालूम हुआ, कागज़ के इस पुर्जे ने माला को सतीत्व के ऊँचे, आभामय लोक से गिरा दिया।

वह पत्र को उठा कर उसकी ओर देखने लगा। उस समय वियोग के दुख की अपेक्षा अपमान का दाह ही उग्र हो रहा था। एक बड़े भारी अघात की आशंका से उसका अतरात्मा सिहर उठा? समीप की किसी मिल से सुबह चार बजे के बिगुल ने बजकर उसे नया दिन चढ़ने की सूचना दी। वह फुर्ती से उठा, पत्र की बत्ती बना कर उसने दाँतों में दबा ली और माचिस की एक सींख खींच कर उसके एक छोर पर लगा दी।

कागज़ से एक निर्बल सी लपट उठने लगी। ज्वला का प्रति बिम्ब उसकी आँखों की पुतलियों में नाच रहा था। उसे ख़याल आया—माला की पहली चिता जली थी उस समय जब मनन बीच में आया था—अब यह उसकी तीसरी चिता जल रही थी।

प्रायश्चित्त—

"पूज्य पिताजी श्री चरणों में प्रणाम !

मैं अपने घोर अपराध का दण्ड स्वयम ही भुगत रही हूँ, इस लिए आशा करती हूँ कि आप और समाज मुझे क्षमा करेंगे। मेरे मन और आत्मा पर पाप की छाया किस प्रकार पड़ी; किस तरह पाप और वासना के प्रभाव को मैंने ग्रहण किया, यह मैं समझ नहीं पाई हूँ। परन्तु पाप की ओर मेरी प्रवृत्ति हुई, मेरे मन में वासना का अंकुर उपजा और उस ओर क़दम रख मैंने अनुचित आचरण किया। आपकी सब आशाओं को मैंने मिट्टी कर, अपने और आपके मुँह पर अपने ही हाथों कालिख पोत दी। इस अवस्था में चुपचाप इस संसार से विदा ले, इस असफल जीवन को समाप्त कर, पापाप्लुत शरीर को जीर्ण वस्त्रों की नाईं छोड़ मैं परम पिता परमात्मा की असीम दया में विश्वास कर यह प्रार्थना करती हूँ।

हे अन्तर्यामी, दयामय विभो ! मेरी निर्बलता को क्षमा कीजिये और फिर मुझे एक बेर नर शरीर का दान दे इस योग्य बनाइये कि मैं पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालनकर अपने नवीन जीवन को वेदोक्त धर्म के प्रचार में लगा कर, हे भगवान् आपकी आज्ञा का पालन कर सकूँ।

आपनी निर्बलताओं के कारण वासनाओं की ओर प्रवृत्ति होने से मेरा मन, और इन्द्रिय लोलुपताओं से मेरा शरीर अपवित्र होकर मैं अब हे परमपिता, आपके सत्य, अनादि और अनन्तज्ञान का संसार में प्रचार

करने के अयोग्य होगई हूँ, इसलिए आत्महत्या के घोर अपराध की शरण ले रही हूँ ।

हे प्रभु ! यद्यपि आत्महत्या आपकी आज्ञा के विरुद्ध है परन्तु क्योंकि यह अपवित्र शरीर आपकी आज्ञाओं के पालन के अयोग्य हो गया है अब इस शरीर को व्यर्थ धारण कर संसार में एक घृणित जीव की भांति रहने से क्या लाभ ? हे पूर्ण ब्रह्म ! आपकी इस अधम पुत्री की आपके चरणों में नत होकर यही प्रार्थना है कि इसकी भूल को क्षमाकर अपनी सेवा का अवसर प्रदान करें । आप करुणा के सागर हैं, आपकी असीम दया के लिए, हे जगन्नियन्ता कुछ भी कठिन नहीं । हे करुणामय ! मुझसे जो अपराध बन पड़ा है, हे दयामय ! उससे मेरी और दूसरी ओर ब्रह्मचारिणी बहिनों को बचाइये । आप अपनी अपरिमेय शक्ति से उनके हृदय में ज्ञान और बल का संचार कीजिये, ताकि वे पाप और वासना की प्रवृत्ति का दमन कर ब्रह्मचर्य का यथावत पालन कर सकें और अपने जीवन को सब सत्य विद्याओं के आदि मूल वेदोक्त ज्ञान के प्रचार से सफल बना सकें ।

'पिताजी, आपने अपनी शक्ति भर मुझे ब्रह्मचर्य और सदाचार के मार्ग पर चलाने का पूरा यत्न किया पर न जाने कैसे मेरे मन में निर्बलता प्रवेश कर गई । धर्मशास्त्र में कहा गया है,—दश इन्द्रियां अश्व हैं और मन सारथी । परन्तु नर नारी के दुर्भाग्य से सबसे पहले यह सारथी ही विपथगामी होकर विद्रोही हो उठता है । इन्द्रियरूपी अश्वों को सुमार्ग पर न चलाकर दायें बायें हाँकने लगता है । घोड़े वासनाओं की चट्टानों से टकरा कर जख्मी हो जाते हैं और यह शरीररूपी रथ जो सत्य ज्ञान के भण्डर के अमूल्य रत्न को लेकर मोक्ष के मार्ग पर चलने के लिये परमपिता द्वारा इस संसार में भेजा गया है, चकनाचूर हो जाता है ।

ऐसा क्यों होता है ? इसका कारण है वेदों के आदेश की उपेक्षा करना। बाल-ब्रह्मचारी भगवान् दयानन्द सरस्वती ने हमें वह मार्ग दिखा दिया है परन्तु हम वासनाओं से आकर्षित हो भटक जाते हैं, मार्ग भूल जाते हैं। पूज्य पिताजी ! मैंने माँ का सुख जाना ही नहीं। वह मेरे होश सभालने से पूर्व ही परमपिता की करुणामयी गोद में जा चुकी थीं। आपने ही माता का भी स्थान लेकर पालपोस कर कष्ट सहन कर यह दुर्लभ शरीर मुझे प्रदान किया परन्तु हा दुभाग्य, मैंने उसकी कदर न की आपने मुझे ब्रह्मचर्य के सत्यमार्ग पर चलाने के लिए क्या नहीं किया ? वासनाओं से बचाने के लिए क्या नहीं किया ? बचपन में सब प्रकार के कुसंग से बचाया। पांच वर्ष की आयु से ही मुझे पवित्र वेद मंत्र कण्ठ कराये, नीति और सदाचार के श्लोक भी याद करा दिये। दोनों समय अपने पास बैठालकर संध्या और अग्निहोत्र भी कराया। बचपन में सदा मुझे मोटे और सादे वस्त्र पहिनाये। शौकीनी की प्रवृत्ति से प्रवृत्ति से बचाने के लिए मेरे सिर के बाल भी कटादिये। पैरों में जूता या चप्पल भी, जैसा कि ब्रह्मचारिणयों को उचित है, नहीं पहिरने दिया। विवाह आदि के बुरा प्रभाव डालनेवाले दृश्यों, नाटक, सिनेमा मेले तमाशे सबसे मुझे बचाया और छः वर्ष की आयु में कन्या गुरुकुल में प्रविष्ट करा दिया, जिसे महर्षि की आज्ञानुसार दयालु वैदिक धर्मियों ने स्थापित किया है और जहाँ ब्रह्मचर्य पालन तथा वेदोक्त शिक्षा का प्रबन्ध है। आज मेरी आयु साढ़े चौदह वर्ष की है, सब प्रकार से उचित वातावरण पाकर भी मैं क्यों पथ भ्रष्ट हो गई ? हाय दुर्भाग्य !

इसका कुछ उत्तरदायित्व दूसरों पर भी है। नरनारी के मन को निर्बलता से बचाने के लिए ही वेदों में बालक और बालिकाओं के लिए गुरुकुलों की स्थापना का उपदेश दिया गया है और उन्हें सब प्रकार के

अनैतिक और वासना मय प्रभावों से बचाने का आदेश किया गया है। परन्तु मैं अपने उदाहरण से वैदिक धर्मावलम्बी महानुभावों को यह बता देना चाहती हूँ कि कलियुग के इन गुरुकुलों का प्रबन्ध सन्तोषजनक नहीं। जैसे मुझ पर वासना का प्रभाव पड़ा, वैसे ही दूसरी ब्रह्मचारिणी बहिनों के मन में भी वासना की प्रकृति जाग उठती है। इसका उपाय होना चाहिए। ऐसा न होने से कन्या गुरुकुलों का उद्देश्य सफल न होगा और महर्षि की आत्मा क्लेशित होगी।

वेदों की आज्ञा ब्रह्मचारिणियों को गृहस्थों की संगति से बचाने की है फिर क्यों गुरुकुलों में गृहस्थि की शौकिनी के प्रभाव को पहुँचने दिया जाता है ? ब्रह्मचारियों और ब्रह्मचारिणियों को गरमी की छुट्टियों में नगरों में जाने की इजाजत क्यों दी जाती है ? सात वर्ष गुरुकुल में रहने के बाद पिताजी मुझे एक दफ़े घर लाये। उसका मुझपर इतना बुरा प्रभाव पड़ा। जो ब्रह्मचारिणियां प्रति वर्ष दो मास के लिए गृहस्थों में जीवन बिता आती हैं, उन पर कितना प्रभाव पड़ता होगा ? वास्तव में बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। बहुत दूर तक वे ही शौकिनी, विलास और वासना की मारात्मक बीमारी को गुरुकुलों में पहुँचाती हैं। जो लड़कियाँ नगरों में छुट्टियाँ बिताकर आती हैं वे प्रायः सुगन्धित तेल, साबुन, चेहरे पर लगाने की क्रीम, पाउडर आदि का ज़िक्र दूसरी लड़कियों से करती रहती हैं। महीन कपड़ों, रेशमी साड़ियों, आभूषणों, ऊँची एड़ी के जूतों और मौज़ों की प्रशंसा करती हैं। दो तीन ने यहाँ तक स्वीकार किया कि उन्होंने घर जाकर, तीन किनारे की धोती, मोजे, गुरगाबी पहरे, सिर में सुगन्धित तेल लगाया, टेढ़ी मांग निकाली, क्रीम पाउडर का व्यवहार किया, सुरमा लगाया और इसमें कोई दोष नहीं।

इसमें दोष नहीं, तो दोष है किसमें ? ब्रह्मचर्य का ही पालन जब

हमने नहीं किया, तो शेष रह क्या गया ? कुछ लड़कियों ने यहाँ तक स्वीकार किया कि उन्होंने नवयुवकों के साथ बैठकर चाय पी और सिनेमा देखा। वे गुरुकुल की शिक्षा समाप्त कर ब्याह करना चाहती हैं। मैं पूछती हूँ; क्या महर्षि का उद्देश्य यही था ? मैं तो आज अपने अपराध की गुरुता का अनुभव कर रही हूँ और संसार से विदा लेती हूँ। परन्तु समाज को सावधान किये जाती हूँ कि वे बेखबर न रहें। गुरुकुल में ब्रह्मचर्य का जैसा पालन होना चाहिए, वैसा नहीं हो रहा। वहाँ भी शौकीनी की बीमारी पहुँच रही है। लड़कियाँ जानबूझकर बालों को इतना ढीला बाँधती हैं कि कानों पर घूम जांय। जानबूझकर एक-आध लट छोड़ देती हैं; ताकि सामने लटक जाय। जानबूझकर कुरते की आस्तीन को कोहनी से ऊपर फाड़ देती हैं, ताकि बाह ब्लाउज़ की तरह दीखे। धोती का आंचल जानबूझकर सिर से गिरा देती है। इन सब बातों की मनाही है। ऐसा करने से उचित दण्ड भी मिलता है परन्तु यह इस बात का प्रमाण है कि शौक़ीनी और विलास की इच्छा वहाँ पहुँच ही जाती है, वह दुर्दमनीय है। वे छिपा छिपा कर कुरतों के किनारों पर सोजनकारी करने का यत्न करती हैं, एक लड़की ने चालाकी से धोती के किनारे पर ऐसे स्याही गिरा ली कि फूल की बेल सी मालूम होने लगी। मुझे स्वयं इस प्रकार की इच्छा हुई। गुरुकुल की ब्रह्मचारिणियों को क्यों ऐसे कुसंस्कारपूर्ण दृश्यों को देखने दिया जाता है ? जो अध्यापिकायें पढ़ाने जाती हैं, वे क्यों महीन, इस्त्री किये कपड़े पहिने रहती हैं ? क्यों किनारेदार साड़ियाँ पहरती हैं ? क्यों चश्मा लगाती हैं ? क्यों अंगूठी पहरती हैं ? क्यों ब्लाउज़, और जम्पर पहनती हैं ? जूड़ा बांधती हैं ? चप्पल या गुरगाबी पहनती हैं ? और फिर क्यों हमें अश्लील पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं ? कहने को पंचतंत्र तथा दूसरी पुस्तकों में से अश्लील

प्रकरण निकाल दिये जाते हैं परन्तु क्या दूसरी पुस्तकों में अश्लीलता नहीं भरी हुई ? महर्षि ने ऐसी पुस्तकें ब्रह्मचारियों के लिए बर्जित की हैं। रघुवंश और शकुन्तला नाटक विशेष विशेष स्थलों को निकाल कर पढ़ाये जोत हैं परन्तु क्या उन छिपाये गये अंशों को पढ़ने की इच्छा हमें नहीं होती ? कोई भी पूर्ण-संस्करण हमें मिलने से हम सबसे पहले वर्जित को ही पढ़ने का यत्न करती हैं। क्या बाल्मीकी रामायण में अश्लीलता नहीं ? उसमें क्या नहीं लिखा—'व्यूढो रस्को वृषस्कन्धः शाल प्रांशुर्महाभुज'।

कुमारी ब्रह्मचारिणियों को यह जानने की क्या आवश्यकता है कि पुरुष का शरीर सुन्दर और आकर्षक होता है ! हमें यह क्यों बताया जाता है कि दुष्यन्त शकुंतला के रूप पर मोहित हो गया था। यह जान कर क्या यह भाव उठना स्वाभाविक नहीं कि किसी दिन कोई हमारे रूप पर भी मोहित होगा ? यह सौन्दर्य की चर्चा ब्रह्मचारिणियों को क्यों सुनाई जाती है ? परमपिता परमात्मा के सिवा संसार में सुन्दर कौन है ?

प्रकृतिक सौन्दर्य का आकर्षण भी ब्रह्मचर्य के लिए घातक है। आकर्षण तो उसमें भी है। गुरुकुल में फुलवाड़ी क्यों लगाई जाती है ? और फूल तोड़ कर हार बनाकर पहिनने की इच्छा होने पर या बालों मे फूल खोंसने की इच्छा होने पर हमें बुरा क्यों कहा जाता है ? यह वार्षिक उत्सव करके सुगन्ध लगाये शृगांर किये नगर की स्त्रियों को बुलाकर हमारे मन में जलन क्यों पैदा की जाती है ? हमारी अध्यापिकाओं के गाल केले के पत्ते की तरह क्यों चिकने और मुलायम रहते हैं ? ब्रह्मचारिणियों का आश्रम सृष्टि के उस कोने में होना चाहिए जहाँ इन वासनामय प्रभावों की पहुँच न हो। पर वह स्थान है कहाँ ?

इन फूलों पर तितलियों को क्यों मण्डराने दिया जाता है ? इन पक्षियों को गुरुकुल में व्यभिचार क्यों करने दिया जाता है ? क्या इसका बुरा प्रभाव ब्रह्मचारणियों के मन और मस्तिष्क पर नहीं पड़ता ? हमें पुरुषों के चित्र क्यों देखने दिये जाते हैं ? हमें यह बताने की क्या जरूरत है कि पुरुष भी संसार में होते है और स्त्री से उनका विवाह होता है ? यही सब रोगों की जड़ है। माना कि दर्पण हमें नहीं दिया जाता परन्तु लोटे के जल में मुख की छाया क्यों पड़ जाती है। हमें यह क्यों बताया जाता है, केश लम्बे और लोचन विशाल अच्छे होते हैं, यह चीजें अच्छी क्यों होती हैं ? यह केवल शृगांर की भावना है, विलासिता है, मन का अब्रह्मचर्य है, पतन है।

मैंने क्या किया ? पाप की अग्नि से झुलसकर क्यों परम पिता की शांतिमय गोद में पुनर्जन्म की अभिलाशा से मुझे आश्रय लेना पड़ा ? वेद के सत्यज्ञान का प्रचार क्या यह ब्रह्मचारिणियां कर सकेंगी जिनके मन में वासना और अब्रह्मचर्य की भावना प्रविट हो चुकी है ?

गुरुकुल के ब्रह्मचर्य आश्रम में रहते हुए ही मेरे मन में विलासिता की भावना उठ चुकी थी परन्तु अधिष्टात्रियों के मुख से सदुपदेश सुन कर मैं उसका दमन करती रही। आखिर मेरे दुर्भाग्य से वह दिन आया, जब पिताजी आप मुझे इस वर्ष बहुत कमजोर हो जाने के कारण दो मास की छुट्टी में घर ले आये। मैं अमृतसर आते ही चकाचौंध होगई। कुछ सोचने या विचारने की शक्ति मुझ में न रही। शृगांर से लदी हुई और सुगन्ध उड़ाती हुई इन सब स्त्रियों को देख मैं यह याद न रख सकी कि मेरे जीवन का पवित्र आदर्श क्या था ?

इस विलास की नगरी में, विलासिता की जीवित पुतलियों के बीच आ मै सब कुछ भूल गई। त्याग के बलपूर्वक बैठाये हुए आदर्श मेरे मन

से उखड़ गये। घर में कोई और स्त्री न होने से, पिताजी आपने यह उचित समझा कि ताऊजी के यहाँ लड़कियों और स्त्रियों के बीच मुझे रखा जाय। यदि आप मुझे अकेले अपने पास रखते तो शायद मेरे लिए वही अच्छा होता। ताईजी, भाभी, 'मृणाल' और 'पद्मा' के बीच आकर मैं कैसी लगती थी? ये लोग आपस में मुझे जंगली बकरी कह कर पुकारती थीं।

यहाँ आकर मैं केवल देखती ही रही, सोचा या समझा मैंने कुछ भी नहीं। यहाँ आकर मैंने देखा ताऊजी के सिवा संध्या कोई नहीं करता। हवन ताऊजी भी केवल एक ही समय करते हैं। संध्या समय हवन मैं अकेली ही करती थी। सोलह आश्विन की संध्या को मैं हवन न कर सकी, बातें ही सुनती रही और भोजन बिना हवन किये ही कर लिया। सत्रह को प्रातः काल मृणाल ने मुझसे 'दरबार-साहिब' घूमने चलने के लिए कहा। वह मुझे ब्रह्मचारिणी के वेश में साथ ले जाने के लिए तैयार न थी। उसके कहने से मैंने रेशमी साड़ी पहनी, ब्लाइज़ पहना, ऊँची एड़ी का जूता पहरा। बाज़ार में जगह-जगह आदम-कद आइनों में जब मुझे अपनी आकृति दिखाई देती थी मैं आनन्द विह्वल हो मुस्करा देती। मेरा मन भटक सा गया घर लौटकर मृणाल के वह कपड़े उतारने को मेरा मन न हुआ।

मैं उसके शृंगार की आलमारी की चीज़ों को देखने लगी। उसमें पाउडर था, क्रीम थी, सुगन्ध थी, होंठ रंगने की बत्ती, नाख़ून रंगने का रंग और न जाने कई और चीज़ें जिन्हें मैं पहचान न सकी, मौजूद थीं। छज्जे से मैंने देखा एक नवयुवती मृणाल की ही तरह शृंगार किये हुए गली में से चली जा रही थी। उसके साथ एक नवयुवक था। दोनों एक दूसरे का हाथ पकड़े चले जा रहे थे। मन में इच्छा हुई दौड़ कर जाऊँ और उस नवयुवती को हटा कर उसका स्थान ले लूँ।

मैं लौटकर मृणाल की अलमारी के सामने आ खड़ी हुई। ज्ञान की आँखों पर अज्ञान की पट्टी बंध चुकी थी, मन पाप-पंक में फँस चुका था। मैंने अपने माथे पर बेंदी और होठों पर लालवत्ती लगाई। सिर के बाल काढ़ टेढ़ी माँग सँवारी और सुगंध लगाई। फिर गली में जानेवाली औरत की तरह आँचल संवार, कमर पर हाथ रख मैंने आइने में देखा। उस समय मेरा मन पाप की सीमा पर पहुँच चुका था—इस अन्तिम समय में सत्य को छिपाने का यत्न न करूँगी—मन में इच्छा हुई कि मेरा व्याह हो जाय, इसी समय हो जाय, मैं गुरुकुल न जाऊँ। मैं छज्जे पर आकर खड़ी हो गई, सामने से जो भी अच्छे कपड़े पहरे युवक जाता दिखाई देता, इच्छा होती उसी से मेरा विवाह हो जाय।

उसी समय छज्जे पर आहट पा, मैंने घूमकर देखा, पिताजी आप खड़े थे। उसी अवस्था में बहुत देर तक घृणा और आश्चर्य से आप मुझे देखते रहे और बिना कुछ कहे ही लौट गये। मैं लज्जा और आत्म ग्लानि से पसीना-पसीना हो गई।

पूज्य पिताजी! उस समय मुझे ज्ञान हुआ कि मैंने क्या किया है? बहुत देर तक मैं अपने पापआचरण के लिए पश्चात्ताप करती रही। अब मैंने समझा कि अपने ब्रह्मचर्य को मैंने वासना की आग में झोंक दिया है—मैंने वैदिक शिक्षा और गुरुकुल को कलंकित कर दिया, आपकी आशाओं को मलियामेट किया, आपको कलंकित किया। मेरे जीवन का जो उद्देश्य ब्रह्मचर्य पूर्वक वैदिक शिक्षा ग्रहण कर वेद के सत्यज्ञान का प्रचार करना था, उस उद्देश्य के योग्य मेरा शरीर नहीं रहा। अब इस कलंक मय शरीर को बचाकर रखने से क्या लाभ? कुमारिल भट्ट ने अपने पाप का प्रायश्चित्त तुपों की अग्नि में झुलस कर किया था, क्योंकि उसने बौद्ध धर्म के आचार्यों को, जो उसके ज्ञान के पिता थे, धोखा दिया था। पिता-

जो मैंने आपको धोखा दिया है, इसलिए मैं भी अपने पाप का प्रायश्चित्त प्राणान्त द्वारा ही करूँगी। मेरी आत्मा प्रायश्चित्त द्वारा निर्मल हो जायगी परन्तु अपने इस कलंकित शरीर और मन का मैं अन्त कर रही हूँ, अब कुछ ही क्षणों की देर है। आप इस कलंकिनी, विश्वास घातिनी का मुख अब जीवित अवस्था में नहीं देख सकेंगे। मैंने विष खा लिया है।

और कोई विष यहाँ न मिल सकने के कारण मैंने शहद और घी मिला कर खा लिया है[१]। मुझे मृत्यु से कुछ भय नहीं, मुझे कुछ पीड़ा अनुभव नहीं हो रही और न मैं पीड़ा से डरती हूँ। मुझे दुःख है तो केवल इस बात का कि मैं जीवन के पवित्र मार्ग से विचलित हो गई। परमपिता परमात्मा मुझे उस जन्म में सद्बुद्धि प्रदान करें, ताकि मैं उनके ज्ञान की ज्योति का जो उन्होंने वेदों द्वारा प्राणि मात्र के उपकार के लिये सृष्टि के आरम्भ में प्रदान की है, संसार भर में प्रचार कर सकूँ। हे दयामय पिता परमात्मा ! आप मेरे पिताजी को मुझ कलंकिनी द्वारा दिये जानेवाले संतान वियोग को सहन करने की शक्ति दीजिये। मैं इस कलुशित जीवन द्वारा उन्हें संसार में लज्जित नहीं करना चाहती।

मुझे विष खाये हुए पाँच घण्टे हो गये हैं। अभी तक सिवाय मतली आने के और कोई कष्ट नहीं हुआ है प्रभु, अब और देरी न करो। इस पापिन को प्रातः काल लोगों के जागने से पूर्व ही अपनी करुणामय गोद में बुलालो। अब मैं अपना कलुषित मुख किसी को नहीं दिखाना चाहती।

लेकिन जाते समय मैं आर्य पुरुषों से यह प्रार्थना करके जाना चाहती हूँ, यदि आप वास्तव में ब्रह्मचारिणियों द्वारा जग का कल्याण चाहते हैं, तो उनके आश्रम को विलासिता और शृंगार के सभी प्रकार के आकर्षणों

---

१. कुछ लोगों का विश्वास है कि घी और शहद बराबर मात्रा में मिलाकर खाने से वह विष का प्रभाव रखता है।

से बचाकर रखिये, ताकि दूसरी बहनें मेरी तरह पथ भ्रष्ट न हो जाय। ब्रह्मचर्याश्रम ऐसी जगह होने चाहिए जहाँ स्त्री पुरुष के सम्बन्ध, या विलास वासना की भावना की पहुँच किसी भी प्रकार न हो सके। लेकिन ऐसा स्थान क्या सृष्टि भर में कहीं भी मिल सकेगा ? फूल, तितलियाँ, मक्खियाँ, चिड़ियाँ, तोते, कबूतर यह कहाँ नहीं पहुँच सकेंगे ?

क्या ब्रह्मचर्याश्रम में रहनेवाले जीवों को भी ब्रह्मचर्य की शिक्षा नहीं दी जा सकती ? यह सब उपकरण ब्रह्मचर्य के लिये घातक हैं। कण्व ऋषि के आश्रम में शकुन्तला पहिले ही प्रलोभन में क्यों फँस गई ? अवश्य ही आश्रम निवासी विवाहित तपस्वियों और जीव जन्तुओं की जीवनचर्या का प्रभाव उसपर पड़ा होगा। शकुन्तला का चरित्र कुछ आदर्श नहीं था फिर भी उसकी कोई निन्दा नहीं करता। क्यों वह वन्य पुष्पों से श्रृंगार करती थी ? क्यों दुष्यन्त को देखते ही उसके मन में विवाह-सम्बन्धी इच्छा उत्पन्न हुई ? क्या यह सब उचित था ?

उमा ने क्यों पति के लिये तपस्या की। कौमार्य के जीवन में पति की कामना करना मानसिक व्यभिचार है। पर वे सब तो सदाचार का आदर्श मानी जाती हैं............तो फिर मैं ही आदर्श से कैसे गिर गई हूँ ? मैं प्राण त्याग द्वारा अपने पाप का प्रायश्चित्त कर रही हूँ, लेकिन अभी तक विष ने अपना प्रभाव नहीं दिखाया।

यह क्या; 'दरबार-साहिब' जानेवाली स्त्रियाँ शनै शनै हरि-कीर्तन करती हुई उठने लगीं ! क्या प्रातः काल लोगों को अपना कलंकित मुख दिखाने के बाद ही, लज्जा और लांछना का बोझ सिर पर लाद कर ही, मैं इस संसार से विदा ले सकूँगी। मृणाल और पद्मा के सामने जो मुझे जंगली बकरी समझती है, मैं कैसे मुख दिखा सकूँगी ? वे भी कुमारी हैं, संसार की कल्पना में जितना श्रृंगार हो सकता है, वह सब वे करती हैं। उन्हें

न लज्जा है, न आत्मग्लानि। उन्हें न कोई लज्जित करता है, न प्रतारणा देता है—सब उन्हें प्यार करते हैं। वे अभिमान से सिर उठाकर चलती हैं।

पाप क्या मेरे ही लिये है; उनके लिये नहीं ?·········पिताजी आपने मेरी ओर किस तिरस्कार की दृष्टि से देखा था ?············क्या आप मृणाल और पद्मा को इस दृष्टि से देखते हैं···············?

आँखें झपकने लगी हैं···········पिता परमात्मा मुझे अब अपनी करुणमय गोद में बुला रहे हैं···········। यह निद्रा नहीं, महा निद्रा है·················ओ३म् तत् सत्।"

हृदय

कई वर्ष से मैं अपने मित्रों को पहली जनवरी के दिन निमन्त्रित किया करता हूँ। कुछ 'नववर्ष' मानने के लिए नहीं। नववर्ष तो मैं वैसाख से गिनता हूँ। ऐसे ही फुर्सत और सुविधा के विचार से।

सब प्रबन्ध हो चुका था। निमन्त्रण की रात का अन्त सिनेमा से करने का विचार था। इसलिए 'रंगशाला' के मैनेजर को मैं एक दर्जन कुर्सियाँ सुरक्षित रखने के लिए टेलीफोन कर रहा था। एक बड़ा नामी चित्र 'कल्पना' उस रोज़ चलनेवाला था इसलिए जगह सुरक्षित कर लेना ज़रूरी समझा। टेलीफोन का धूतू (Mouth piece) नीचे रखा ही था कि प्रसादी ने एक तार का पीला लिफ़ाफ़ा हाथ में दिया। कुछ शंकित भाव से लिफाफ़ा फाड़कर देखा तो काठ मार गया।

बख्शी जी का तार था कांगड़े से,—

'मिस्टर खन्ना भयानक बीमार, तुरन्त पहुँचो।'

तार मेज़ पर रख दोनों हाथों से सिर थामकर बैठ गया। क्या करूँ और क्या नहीं। ? अपनी समझ को कोसा, किस मुहूर्त में खन्ना को कांगड़े भेज दिया था।

क्या हो गया उसे ? कौन बीमारी आ लगी ? क्या किसी चट्टान से लुढ़क पड़ा या किसी भालू चीते ने उसे फाड़ खाया ? अस्तु जो भी होता, गये बिना चारा नहीं था।

सोचा बख्शी क्या कहते होंगे ? उनके माथे यह अच्छी बला पड़ी।

अगर जाता हूँ तो कल पहली जनवरी को सब मित्र लोग क्या कहेंगे ? कोई कहेगा खूब मज़ाक किया और अगर कोई इसे अपमान समझ ले तो क्या आश्चर्य ? और रुपये जो पानी में मिल गये सो अलग ।

रानी को समझाया कि मित्रों को सब बात समझा कर पहिले से ही निमन्त्रण स्थगित करने की सूचना दे देना और जैसे हो—गये बिना तो चारा नहीं ;

रानी ने कहा—"घबराओ मत बख्शी जी को तार दे दो, वे खन्ना को भेज देंगे या खुद आकर छोड़ जायेंगे । वहाँ भला क्या इलाज होगा ? डाक्टर भी तो मिलना वहाँ मुश्किल है और यहाँ यह सब काम बिगड़ जायगा ।"

सुनकर मेरे तन बदन में आग लग गई । बेबसी की हालत में जब कोई उल्टी दलील सुझाता है तो ऐसा ही होता है । मैंने झुँझला कर कहा —'क्या उल्टी खोपड़ी की बात कहती हो ! अगर वह आ सकने लायक़ होता तो आ नहीं जाता ! और बख्शी क्या मेरे नौकर हैं जो उन्हें हुक्म दे दूँ । तुम्हारे ही कहने से तो मैंने उसे परिचय-पत्र देकर वहाँ भेजा था और मुसीबत आ पड़ी तो उल्टा रास्ता दिखाती हो ?'

यद्यपि मेरे इस दोषारोपण में सचाई का अंश बहुत कम था परन्तु रानी उसे उदारता से सहगई और बोली—'न हो, मैं चली जाऊँ ।'

स्त्रियों की पूर्ण स्वतन्त्रता और समानता का मैं ज़रूर पक्षपाती हूँ परन्तु जब वे अपने आपको पुरुषों की अपेक्षा भी अधिक चतुर समझने लगतीं हैं तब, क्रोध आना स्वाभाविक है । मैं भन्ना उठा । परन्तु कुछ कह न सका ।

पढ़ा है, रूस में पुराने समय विवाह के समय जब स्त्री पति को सौंपी जाती थी उस समय एक चाबुक भी साथ में दिया जाता था । उसका ज़रूर

कुछ मतलब रहा होगा। पुरुषों के अधिकार का वह स्वर्णयुग गया। अब तो पचास प्रतिशत काम स्त्री की आज्ञा से और शेष उसकी अनुमती से करने पड़ते हैं। सो दाँत किटकिटाने के सिवा,—वह भी 'नेपथ्य' में— और कुछ चारा नहीं।

बड़े दिन की छुट्टियों से पहिले प्रोफेसर खन्ना ने आकर मुझ से कहा—'इन छुट्टियों में मैं अपनी कविताओं की पुस्तक को समाप्त कर प्रकाशक को दे देना चाहता हूँ। लाहौर के भीड़ भड़ाके में यह काम नहीं हो सकता। कोई एकान्त स्थान बताओ जहाँ मैं इस काम को समाप्त कर सकूँ।' इसी के फलस्वरूप मैंने प्रोफेसर साहब को कांगड़े बख्शीजी के यहाँ परिचय-पत्र देकर भेज दिया और यह भी कह दिया कि पुराने काँगड़े का टूटा हुआ किला जैसा एकान्त और भावपूर्ण स्थान है, वैसे स्थान पृथ्वी पर अधिक नहीं है। उसी सिलसिले में यह तार आ पहुँचा।

रात भर सफ़र कर सुबह मुँह-अँधेरे पठानकोट पहुँचा और वहाँ से पहिली मोटर में पहाड़ी बर्फ़ानी हवा से बिंधता हुआ प्राय: दस बजे काँगड़े पहुँच गया। शंका से धुकधुकाते हृदय से लम्बे-लम्बे क़दम रखता हुआ मैं बख्शी जी की कोठी पर पहुँचा।

दफ्तर में कोई नहीं था। मैं सीधा भीतर चला गया। जिस कमरे में खन्ना के होने का अनुमान था उसकी ओर ही चला। पलंग के एक ओर बख़्शी जी और दूसरी तरफ़ सरकारी अस्पताल के डाक्टर कुर्सी पर बैठे थे। वे लोग मेरी प्रतीक्षा में थे।

खन्ना पलंग पर था। उसकी आँखें सजग खुली हुई थीं, हाँ चेहरा कुछ पीला था। मानों उसने मुझे देखकर भी नहीं देखा। मैं कुछ न कह अँगीठी के समीप की कुर्सी पर जा बैठा। बख्शीजी ने मेरी ओर देख डाक्टर से कहा—'आप ही प्रोफेसर खन्ना के मित्र हैं।'

डाक्टर ने स्वीकृति सूचक भाव से सिर हिला दिया।

उसी समय खन्ना सहसा गा उठा—'पले······नीठड़ी······होयां!' मैं चकित रह गया। खन्ना छत की ओर देख करुण परन्तु भर्राए हुए स्वर में गाने लगा,—

'सीकन्दरे दीये धारे मुइय्ये!
पले नीठडी होयाँ, पले नीठड़ी होइयाँ,
तेते परे-परेलड़िया, मुइय्ये मेरे पेइय्ये!'

बड़ी लम्बी तान से, जैसे काँगड़े की पहाड़ियों में लम्बी लम्बी तानों से लोग गाया करते हैं, वह गाने लगा। मैं हैरान था, इतनी जल्दी वह इस स्थान की बोली कैसे सीख पाया। गाना बीच में छोड़ खन्ना लिहाफ़ अलग फेंक, उठ भागने की चेष्टा करने लगा, परन्तु डाक्टर और बख्शीजी पहिले से ही सतर्क थे। उन्होंने उसे दबोच लिया। दूसरी ओर से मैंने थामा। वह फिर चुप हो लेट रहा।

मालूम हुआ कि प्रायः पिछले रोज़ बाद दुपहर से प्रबल सन्निपात के लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं। रात भर उसकी यही अवस्था थी। बल्कि गत दिन बाद दुपहर से ही यह सन्निपात की हालत थी।

हुआ यह कि प्रो० खन्ना नित्य अपनी कविताओं की पाण्डुलिपि ले इधर-उधर जंगलों में निकल जाया करते थे। एक रोज़ वह इस प्रकृति-पूजा में भटक गये और न जाने कहां-कहां मारे फिरे। आखिर एक पहाड़ी उन्हें बख्शीजी की कोठी पर छोड़ गया। उस दिन से प्रो० साहिब लिखने-पढ़ने का काम कोठी पर ही करते थे, केवल सैर के लिये ही बाहर जाते और उस समय बख्शीजी का कोई आदमी उसके साथ हो लेता।

इकत्तीस दिसम्बरको दुपहर के बाद अढ़ाई बजे की मोटर से खन्ना की पठानकोट लौटने की तैयारी थी। उस दिन प्रातःकाल आठ बजे उन्होंने

अन्तिम बार कांगड़े के पुराने किले को देखने की इच्छा प्रकट की। बख्शी जी का एक मुन्शी उनके साथ गया।

आकाश में घने काले बादल उमड़ रहे थे और ऊंची चोटी पर किले के भग्नावशेष के चारों ओर पर्वत-श्रेणीयां और चट्टानें अनन्त सागर की भांति दृष्टि की सीमा तक फैली हुई थीं। क्षितिज पर आकाश से मेघ उमड़-उमड़ कर और पृथ्वी से पर्वत मालायें उठ-उठकर एक साथ मिल गई थीं। इस आंगन में कहीं गहरी श्यामलता लिये बन-राशियां पहाड़ियों पर फैली हुई थीं और जहां-तहां हलकी हरियाली लिये खेतों के टुकड़े बिछ गये थे। कहीं उभरी हुई पहाड़ियों के बीच से सूखी हुई पहाड़ी नदियों के मार्ग हलकी अनी की रेखा के समान दिखाई पड़ रहे थे और कही जल की पतली धारायें मेघों की छाया पड़ने से बहुत लम्बे-लम्बे काले नागों की भांति सो रही थीं।

सुदूर नीचे पहाड़ी की तराई में प्रबल बेग से बहती हुई बान गंगा चट्टानों से टकरा कर घनघोर शब्द कर रही थी परन्तु हवा इतनी तेजी से बह रही थी कि नदी का शब्द सुनाई नहीं पड़ सकता था।

तेज ठण्डी हवा, मेघावृत्त आकाश और उसपर बूंदाबूंदी होने लगी। सर्दी क्या थी तीर सी बदन को पार किये जाती थी। एक गम्भीर गहरी उदासी चारों ओर छाई हुई थी। उसी दृश्य को खन्ना किले की एक टूठी हुई दीवार पर से खड़े देख रहा था। भावोन्मेश से उसकी आँखें मुंदी जा रही थीं। खन्ना जैसे आदमी पर—जो काले बादल को देख आहें भरने लगें, इस दृश्य का क्या प्रभाव पड़ा होगा ?

इस दृश्य पर उसकी तरल दृष्टि तैर रही थी। तेज हवा से उसकी हैट उड़-उड़ जाती थी और वह उसे दबा-दबाकर रख रहा था। उसी समय नीचे कुछ दूर से करुण परन्तु सुरीली और स्पष्ट आवाज सुनाई

दी । खन्ना ने उस ओर दृष्टि कर देखा, एक पहाड़िन किले के भीतर की खोल्ली ढलवां जमीन पर उगे लम्बे घास को दराती से काट रही है ।

वह सामने की ऊँची पर्वत-श्रेणी की ओर देख हृदय हिला देने वाले स्वर में गा रही थी—

"सींकदरे दीये धारे मुइये पले नीठड़ी होयां, पले नीठड़ी होयां ।"

खन्ना बुत की तरह खड़ा उसे सुनता रहा । वह ज़रा चुप हुई तो उसने मुंशी की ओर घूम कर आर्द्र स्वर में पूछा—'यह क्या गाती है ?'

मुंशी ने कहा—'साहब, यह अपने मायके जाने का गीत गाती है ।'

खन्ना ने कहा—'इसका मतलब तो बताओ ।'

मुंशी ने समझाया—'वह जो ऊँची पहाड़ियों का सिलसिला है उसे पहाड़ी लोग 'सिकन्दर-की-धार' बोलते हैं । इस लड़की का मायाका सिकन्दर की धार की परली तरफ है । वह गाती है सिकन्दरे दिये धारे पले नीठड़ी होयां'—ओ सिकन्दर की धार पलभर को तू नीची हो जा ।'

हवा का तेज़ झोंका आया और खन्ना की हैट उड़कर यह गई वह गई ! मुन्शी उधर झपटा परन्तु हैट हवा में उड़ते हुए सूखे पत्ते की भांति दूर जा निकली ।

खन्ना ने उपेक्षा से कहा—'जाने दो हाँ, वह क्या गाती है ?'

इतने में औरत ने गाया—'ते ते परे, परेलड़िया मुइय्ये, मेरे पेइय्ये ओ······!'

मुन्शी ने कहा—'यह कहती है, 'तेते परे परेलड़िया मुइय्ये !' अरी तू मर गई तेरे पीछे 'मेरे पेइय्ये' मेरे मायके हैं । तू ज़रा नीची हो तो मैं उसे देख लूं ।

खन्ना चुपचाप, घास काटने की उलझन के कारण संगीत की उन टूटती हुई मधुर तानों को सुन रहा था । वर्षा तड़ातड़ उसके सिर पर

पड़ रही थी और ओवरकोट पर से बहती हुई नीचे चली जा रही थी। मुन्शी ने अदब से अपना कम्बल उतार कर देना चाहा परन्तु खन्ना ने ध्यान न दिया।

मुन्शी ने कहा—'साहब इधर आड़ में हो जाइये सर्दी ज्यादा है।' खन्ना ने सुना नहीं। उसके कान चातक के समान स्वाती बूँद की प्रतीक्षा में थे। वह पहाड़िन वर्षा में भीगती थी घास काटती थी और जब तब टेर लगा देती थी—

'सिकन्दरे दिये धारे मुइय्ये!'

'पलें नीठड़ी होयाँ, पलें नीठड़ी होयाँ ओ, तेते परे परेलड़िये मुइय्ये मेरे पेइय्ये'।

मुन्शी के कई दफा टोकने पर खन्ना लौट चलने को तैयार हुआ। उसके कानों में अब भी पहाड़िन के गीत की गूंज थी परन्तु शरीर सर्दी से विजड़ित हो जाने के कारण कदम लड़खड़ा रहे थे।

प्रो० खन्ना के लौट आने पर बख्शीजी ने देखा, उनके कपड़े एक-दम भीगे हुए हैं और होंठ सर्दी से नीले पड़ गये हैं। फौरन गरम चाय लाने के लिए कहा गया और खन्ना कपड़े बदलने का उद्योग करने लगा परन्तु बीच में ही लड़खड़ा गया। उसे एक आराम कुर्सी पर टिका दिया गया। चाय आते-आते उसके दाँत बंध गये।

प्राय: आध घण्टे में सरकारी अस्पताल के डाक्टर आ पहुँचे। डा० ने निदान कर जब विषम सन्निपात हो जाने की बात कही तो बख्शी जी बहुत घबराये। मुझे तार द्वारा बुलाना उन्होंने आवश्यक समझा। रात भर खन्ना के हाथ पैर सुहलाये गये। डाक्टर ने कई दफ़ा सुइयां लगाईं परन्तु कुछ न बना।

× × ×

रानी ने सुना तो मटर-मटर से आंसू टपकाने लगी। बोली—'हाय बेचारा खन्ना !...जी, उसकी कविताओं की पुस्तक में उसकी फोटो सहित छपवाऊँगी'।

मैंने कहा—'कविता की पुस्तक ! अब कहाँ रक्खी है वह पुस्तक ? वह नहीं छप सकती।'

उसने आँसू पोंछकर कहा—'नहीं लाओ, मुझे दे दो मैं छपवाऊँगी'।

मैंने कहा—'पुस्तक ! जो आदमी एक गीत के पीछे जान दे दे उसकी कविताओं से संसार का क्या भला होगा ? मैंने वह पाण्डुलिपि उसके शरीर के साथ ही विसर्जन कर दी।'

रानी ने वितृष्णा से मेरी ओर देखकर कहा—'हाय, तुम बड़े हृदय-हीन हो।'

मैंने उत्तर दिया—'हां, यदि कविता लिखने और जाड़े की बसंत में जाड़ा खा सन्निपात सिर लेने से ही 'हृदय' होता है तो भई, उससे मैं अवश्य हीन हूँ।'

पराई

कार्तिक के दिन थे। वर्षा बीत चुकी थी। दोपहर के समय आधी रात की सी स्तब्धता छा रही थी परन्तु उसमें रात की लरज और डर न था।

पहाड़ों के ढलवानों पर खेतों की जुताई हो रही थी। सुनहली धूप में घास से मढ़ी पहाड़ियाँ, पहाड़ों के पार्श्वों पर चीड़ों के जंगल, जुते अध-जुते धूसर खेत, मकानों की फूस और स्लेट की छतें सब चकाचौंध हो रहीं थीं। तलहटी में जहां पानी कलकल बह रहा था, वह गली हुई चाँदी-सा झिलमिला रहा था। जहाँ वह स्थिर था, वहाँ शरत के आकाश की प्रति छाया से ऐसा जान पड़ता था मानो, शरत की नीली साड़ी रंगने के लिये नील के कुंड हों।

पशु वृक्षों के नीचे बैठे संतोष से रोंथ कर रहे थे। स्त्रियाँ घर के आँगन में मक्का और धान को धूप दिखा रही थीं या बरसात के सीले हुए कपड़ों को सुखा रही थीं। पुरुष जुताई में व्यग्र थे। ऊँचे वृक्षों में फ़ाख्ता बोल रही थी, पृथ्वी पर खंजन फुदक रहे थे, झाड़ियों में झिल्ली और झींगर अपनी आखिरी तानें अलाप रहे थे। मनुष्य को फुरसत नहीं थी, प्रकृति हेमन्त की निद्रा से पहले अलसा रही थी।

पुरली गाँव से कुछ नीचे विशाल काय चीड़ों की घनी छाया में एक बड़ा सा बरसाती तालाब है। आसपास के टीलों से रिस-रिस कर इसमें बहुत-सा पानी जमा होता रहता है और फिर बीस फुट नीचे बीहड़

चट्टानों पर झरने के रूप में मोती उछालता हुआ गिरा करता है तालाब बीहड़ चट्टानों से घिरा रहने के कारण गवाले पशुओं को यहां पानी पिलाने नहीं लाते। आमतौर पर किसी भी ज़रूरत के लिये यहां कोई नहीं आता। गाँव की औरतें ही दुपहर या जबतब अकेली दुकेली यहाँ कपड़े धोने आया करती हैं।

बरसात में बहुत से मैले कपड़े जमा हो गये थे। चार दिन से रक्खी छोटी बहिन पारो के साथ कपड़े धोने वहाँ जाती थी। रक्खी के सिर घर का बोझ माँ के बराबर ही था। उसकी उमर भी सत्रह की थी शहर होता तो न जाने क्या होता परन्तु वह था कांगड़े का छोटा सा पहाड़ी गाँव।

पहाड़ी गाँव में संस्कृति और कवित्व शिक्षा के अभाव में कहाँ से हो? वहाँ न सौन्दर्य का चर्चा न पूजा। रोज़मर्रा के सादा जीवन की गिनीचुनी बातों से ही किसी को फ़ुर्सत नहीं लेकिन जब कभी चर्खा कातने स्त्रियाँ बैठतीं या बावड़ी पर मिलतीं, उस समय कभी किसी ने लख्वी सिंह की लड़की के चाँद की परी होने में शक नहीं किया।

यूँ तो सत्रह बरस की आयु में कौन लड़की सुन्दर नहीं जान पड़ती? यदि सृष्टि का यह विधान न होता तो सृष्टि की परम्परा कैसे चालू रहती। प्राकृति के इस काम चलाऊ (Sin-qua-non) सौन्दर्य से परे जो सौन्दर्य है, जिसका अस्तित्व अधिकांश में चित्रों, मूर्तियों और कविताओं में ही मिलता है, जिसकी लाग से साधारण स्त्री या पुरुष मात्र के सौन्दर्य की स्तुति चलती है, वह तो कहीं ही मिलता है।

रक्खी की छरहरी देह हवा में डोलते हुए केले के पत्ते की भाँति स्वयम ही लच लच जाती थी। उसका रंग वह था जिसके पाने के लिए शहर की चतुर रमणियाँ पर्ल-शेड (मोती झलक) पाउडर का व्यवहार

करती हैं। लम्बी पलकों वाली लम्बी आंखें कानों को छू लेना चाहती थीं। माथे से सीधी उतरती जरा लम्बी नाक पतले-पतले होंठों को देख सहसा सीधी खड़ी होगई थी। हँसी उसके मुँह में छिपे अनमोल मोतियों की माला को उघाड़ने के लिये पागल रहती थी।

रक्खी और पारो लकड़ी की छोटी-छोटी थापियों से आहिस्ता-आहिस्ता पीटकर कपड़ों को धो धो कर एक ओर रखती जाती थीं। अपने शरीर के कुरते और सिलवारें उन्होंने सबसे पहिले धोकर एक ओर सूखने डाल दिये थे। रक्खी शरीर पर केवल एक चादर लपेटे हुए थी। पारो की उमर कम होने के कारण कमर में केवल एक अंगोछा था।

रक्खी ने कहा—'पारो सुक्खू के कपड़े कहाँ लाई ?'

पारो ने जवाब दिया—'मुझे क्या पता, माँ ने जो दिया मैं ले आई।'

रक्खी ने व्यग्र होकर कहा—'हाय हाय माँ ने सुक्खू के कपड़े तो दिये ही नहीं, वह क्या पहरेगा ? बड़ी रानी बहिन है, जा भागकर ले आ।'

पारो ने एक भीगी हुई सिलवार पहनी, सिर पर अंगोछा रखा और ऊपर से कुछ धोये हुए कपड़े सिर पर रख वह घर की तरफ़ भाग गई।

पारो चट्टानों के परे दस कदम ही गई थी कि रक्खी के मन में खटका हुआ। उसके मन ने कहा—पारो को भेज अकेले रह उसने अच्छा नहीं किया।

उसे सहसा पूरन का ख़याल आया। पूरन बीस इक्कीस बरस का नौजवान था। उसका मकान पुरली के सामने पानी की पतली धार के उस पार पहाड़ के ढलवान पर बसे पनेड़ी गाँव में था। वह नम्बरदार का लड़का था। आसपास के सभी लोग पूरन की तारीफ़ करते थे। बहुत समझदार नौजवान, घर बार का काम काज बड़े लगन से देखनेवाला बड़े भाइयों के सामने उसने कभी आँख नहीं उठाई थी।

लेकिन रक्खी उससे नाराज़ थी। वह उससे डरती थी। पाँच छः दफे पूरन उसे बावड़ी पर या सुबह शाम बाहर जाते या लौटते समय मिला था। एकान्त देख उसने बहुत आहिस्ता से रक्खी को पुकारा था। किसी दूसरे आदमी के सामने वह चुप रहता। रक्खी को यह निश्चय था पूरन उसे अकेले मिलने की चेष्टा में रहता है। वह थप थप थापी से कपड़े पीटती जाती थी और पूरन की दुष्टता की बात सोचती जाती थी।

तालाब से जिस जगह झरना गिरता है उस जगह गरने[1] की भारी झाड़ी है। कुछ आहट पा रक्खी ने सिर उठाकर देखा। सचमुच पूरन ही झाड़ियों की आड़ से निकलकर सामने आ खड़ा था। रक्खी बहुत घबराई, उसकी बल खाई लटें चारों ओर बिखर रही थीं। उसके शरीर पर केवल एक भीगी हुई चादर लिपटी थी। पूरन ने होठों पर उंगली रख, उसे बिलकुल चुप रहने का संकेत किया। रक्खी क्रोध और लज्जा में बावली होगई।

उसने शरीर को चादर में सिमटा, आँखे निकाल कहा—'हट यहाँ से ! तू यहाँ क्यों आया बेशर्म !'

पूरन ने इस फटकार की पर्वाह न की। वह कुछ कदम आगे बढ़ आया। रक्खी ने झुंझलाकर कहा,—'जा यहाँ से नहीं तो मैं अभी चिल्लाती हूँ, तेरा सिर दाव से कटवाती हूँ।'

पूरन के चेहरे पर एक आर्द्र व्याकुलता छाई थी मानो उसे अपने प्राणों का भय नहीं कुछ और ही भय था। उसने एक कदम और आगे आ एक लम्बी साँस खींच कर कहा—'रक्खी !'

रक्खी ने और सिमटकर कहा—'मैं चिल्लाती हूँ, दूर हो चाण्डाल !'

---

१. एक कांटेदार झाडी।

पूरन ने आहिस्ता से कहा—'तू चिल्लायेगी तो मैं उन झरने वाली चट्टानों पर कूद पड़ूंगा।'

रक्खी ने चिल्लाने के लिये छाती में सांस भरी, पलक मारते में पूरन झरने की एक डाल पकड़ झरने पर लटक गया। पूरन का केवल मुंह और बाहें रक्खी को दिखाई दे रही थीं।

रक्खी की चिल्लाहट दब गई। उसने भय से तड़फ़ कर कहा—'हाय ना पूरन।'

पूरन फिर ऊपर आगया। रक्खी उसी तरह गठड़ी सी बनी बैठी थी। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में जल भर आया था। पूरन को आगे आते देख, रक्खी ने गिड़गिड़ाकर कहा—'हाय, मैं तेरे पैर पड़ती हूँ तू जा।'

पूरन ने काँपते हुए स्वर में कहा—'मैं जाता हूँ एक बात पूछूँगा, रक्खी तू मुझसे ब्याह करेगी?'

रक्खी का सारा शरीर लाल होगया। उसने फिर गिड़गिड़ा कर कहा—'हाय, तू चला जा।'

पूरन ने कहा—'रक्खी तू मुझसे ब्याह नहीं करेगी तो मैं ज़हर खाकर मर जाऊँगा, बता मुझसे ब्याह करेगी?'

रक्खी ने कातर स्वर में कहा—'मैं क्या जानूँ, चाचा जाने। तेरे पैर पड़ती हूँ जा कोई आजायगा।'

पूरन ने कहा—'पारो तो अभी घर पहुँची होगी, रक्खी मैं दिन रात तेरा नाम जपता हूँ, तू मुझसे नाराज़ रहती है।'

रक्खी ने अत्यन्त व्याकुल स्वर में फिर दुहराया—'हाय, पूरन जा।'

पूरन ने प्रार्थना के स्वर में पूछा—'सच बता मुझसे नाराज़ है, मेरे सिर की क़सम एक दफ़े बता दे?'

रक्खी ने आँखें पोंछ जवाब दिया—'नहीं, अब जा पारो आजायगी।'

पूरन ने कहा—'मैं जाता हूँ, पर तू रोज पानी लेने आमलेवाली बावड़ी पर आना, देख मैं कुछ बोलूँगा नहीं, केवल एक आँख देख लिया करूँगा।'

रक्खी ने हाथ जोड़ बिलख कर कहा—'हाय, पूरन जा।'

पूरन ने कहा—'जाता हूँ पर जिस दिन तू नहीं आयगी मैं इसी झरने पर आकर कूद पड़ूँगा'

पूरन चला गया।

× × ×

अगले दिन रक्खी दिन भर असमंजस में पड़ी रही। मन भारी भारी सा होगया। वह पूरन की बात न सोचने का यत्न करती थी परन्तु वह मन से हटता ही न था। उसे उस पर क्रोध आता था, क्यों वह उसके मन में बार बार आता है? उसे क्रोध आता था परन्तु पूरन के प्रति पहला विद्वेश अब न जाने कहाँ चला गया?

रक्खी को मालूम होता था—वह थक गई है, जल में बही चली जा रही, पैर पृथ्वी पर नहीं लगते, दूर किनारा दिखाई दिया, परन्तु किनारे पर पूरन खड़ा था, कोई चारा नहीं था, उसने आँखें बन्द करली परन्तु निश्चय था वह डूबेगी नहीं।

तीसरे पहर उसकी छाती लुहार की धौंकनी की तरह धक धक करने लगी। आमलेवाली बावड़ी पर वह किस तरह जायगी और न जाने सेही कैसे निर्वाह होगा? उसने मन में कहा—चाहे जो हो वह बेशरमी मुझसे न हो सकेगी। व्याकुलता और भय से उसके लिये खड़े रहना असम्भव होगया। वह एक चादर में मुँह लपेट कर खाट पर पड़ गई।

दिये जल गये पर रक्खी खाट से न उठी। माँ के बुलाने पर उसने कह दिया—सिर में दरद हो रहा है। उसका हृदय द्रवित होकर नेत्रों के रास्ते बह जाना चाहता था, इच्छा होती थी, खाट के नीचे धरती फट

जाती और वह उसमें समा जाती। उसी समय उसका पिता लख्वीसिंह बाहर से लौटा। घबराई हुई आवाज़ में उसने रक्खी की माँ से कहा—'बड़ा जुल्म हुआ, नम्बरदार का लड़का पूरन 'चीड़ताल' के झरने से गिरपड़ा।'

रक्खी की माँ की चीख निकल गई, उसने कहा—'क्या ?'

लख्वीसिंह ने कहा—'अपनी एक भैंस को ढूड़ने वह ताल पर गया था, जाने कैसे उसका पैर किसी पत्थर पर से फिसलकर वह नीचे झरने में गिर पड़ा। पिरथू नीचे खेत में था उधर कुत्ते को भौंकते देख उसने शोर मचाया। कई आदमियों की मदद से वहाँ से निकलवा नम्बरदार के घर पहुँचवाकर अभी आ रहा हूँ।' लम्बी साँस खींच उसने कहा—'देखो भगवान की करनी। लड़का चट्टानों पर नहीं गिरा चीड़ों और गरनों की जड़ों में उसकी टाँगें फॅस गईं, लातों की तमाम खाल खिंच गई पर जान बच गई। चट्टान पर गिरता तो हड्डी चूर चूर हो जाती।'

रक्खी पहली ही बात सुनकर मूर्छित होगई थी। बात का पिछला भाग कानों के रास्ते दिमाग़ में न पहुँच सका। माँ ने जब उसे खाना खा लेने के लिये पुकारा, उत्तर न पा समझ लिया लड़की को नींद आगई है।

कुछ रात और जाने पर सोने से पहले माँ बेटी को देखने आई। रक्खी खाट पर चित पड़ी खुली आँखों से छत की ओर देख रही थी। मां को उसने नहीं देखा। माँ ने लड़की के सिर पर हाथ रख कर देखा, वह बुखार की गरमी से जल रहा था।

माँ और पारो घबराहट में बैठकर रख्वी के हाथों और पैरों को काँसे की कटोरी से मलने लगीं। माँ पारो को पूरन के गिरने और बचने का हाल जैसा जैसा पड़ोसनों से सुना था समझा रही थी। धीरे धीरे वह बात रक्खी के कान में भी पहुँची। वह फूट कर रो उठी। पारो ने पूछा बहिन सिर दरद हो रहा है क्या ?

माँ ने कहा—'नहीं नहीं बुखार की बेहोशी है ला ठण्डे पानी का अँगोछा सिर पर रख। रक्खी उस रात बहुत रोई।'

× × ×

तीज का त्यौहार था रिम-झिम रिम-झिम पानी बरस रहा था। लड़के लड़कियाँ, गाँव की मनचली नई व्याही बहुएँ नम्बरदार के आँगन में लगे शहतूत के बड़े पेड़ पर झूला डाल कर झूल रही थीं, और गीत गा रही थीं। रक्खी बहुत मनाने पर भी नीचे न उतरी वह गुम सुम रुआसी सी बैठी थी। आध मील पर उसके माइके हैं परन्तु पहली तीज पर भी एक दिन के लिए उसे माइके जाने न दिया। छोटा भाई आकर लौटगया। वह रात पूरन से रूठ गई तो उसे डाँट खानी पड़ी। बरस भर उसे ससुराल आये नहीं हुआ लेकिन इसी बीच में कई दफ़े उसे डांट और मार की धमकी मिल चुकी थी। वह लाड़ से पली लता की तरह थी, माँ बाप ने उसे कभी तिर्छी आंखों नहीं देखा था। उसका दिल भला धमकियाँ सहने लायक था?

'वीरो' रक्खी की ननद थी। उसका व्याह हुए चार बरस होगये थे लेकिन अब भी वह तीजों पर मायके आई थी। रक्खी की सुसराल में वही सहेली थी। जिठानियाँ उस पर नाजायज दबाव रखना चाहती थीं। सास की नज़रों में छोटी बड़ी सब एक थीं। एक वीरो को ही उसके प्रति पक्षपात था। कुछ उसके अनुपम रूप के कारण, कुछ उसकी सरलता के कारण, कुछ बचपन का सहेलपना। उससे उसे कुछ बटाना न था। वीरो की उम्र कुछ ज्यादा नहीं थी परन्तु उसका दबदबा था। पति भी उसे बहुत मानता था। वह खास समझदार समझी जाती थी। वीरो और रक्खी एक खाटपर लेटकर घण्टों सुख दुख की बातें किया करती थीं। रक्खी की जिठा-नियाँ जलतीं और बड़बड़ातीं, परन्तु वीरो को कोई कुछ नहीं कैह सकता था।

वीरो ने रक्खी की आँखें अपने आँचल से पोंछकर कहा—'हाय, हाय पागल लड़की इतना घबराती है ?' रक्खी उसकी गोद में सिर रखकर बोली—'मैं तो योंही मर जाऊँ तो अच्छा है पर मुझ बदकिस्मत को मौत कहां ?'

वीरो ने उसे छाती से लगाकर कहा—'कैसी बाते करती है, तुझे कौन दुख है पगली; तेरे जैसा मर्द किसके होगा ?' और उसका सिर चूम लिया।

रक्खी ने कहा, जीजी अब वह बात नहीं। मर्दों के दिल का ठिकाना नहीं। मुझे माँ बाप ने कभी आँख तक नहीं दिखाई, ये मुझे हमेशा धमकाते रहते हैं, मारने की धमकी देते हैं। मैंने कहा—मुझे एक दिन के लिये माँ को देखने भेज दो। नही माना, उल्टे धमकाने लगे। अब जब अपना मन हो तभी हँसते बोलते हैं नहीं तो बात-बात पर डाँट देते हैं। जीजी, अब मेरा दिल जीने को नहीं चाहता, उनका दिल अब फट गया है। न जानें उनका दिल 'उसी' बात से नाराज़ है, पहिल दिन ही मुझे डाँटने लग थे। जीजी उनका जी बड़ा कर्रा है, जरा दया नहीं। उन्हें मेरी कुछ परवाह थोड़े ही है !

वीरों ने रक्खी की पीठ पर हाथ रख उसे गोद में खींचकर कहा—'पागल है, तेरी जितनी परवाह पूरन करता है, उतनी कोई क्या करेगा ? मर्द ने जरा डाँट डपट न की तो ऐसा मट्टी का लौंदा-मर्द ही क्या ? यह तो मर्दों की मर्दानगी है, उनका क़ायदा है। बिलकुल मिनमिन करे ऐसे मर्द से तो किराहत उठती है। पागल, अपने मर्द की डांट तुझे बुरी लगती है, तेरी परवाह उसे न हो तो तू कहीं जाये, उसे क्या मतलब। तू तो उसके दिल का टुकड़ा है, इसीसे तुझे पूरन सोने की डिबिया में रखता है। मैं जानती हूँ तेरी तकलीफ़ सुनकर पूरन कैसे बेहाल हो जाता है पर

यह सबके सामने कहने लगे तो कैसे काम चले ? अपनी ही चीज़ को डाँटा भी जाता है। डाँटने क्या किसी और को जायगा ? जिस पर मरता है उसीको तो डाँटेगा।'

रक्खी ने गहरी साँस ले आँसू पोछते हुए कहा—'जीजी वह बात अब नहीं, कहाँ जान देने को फिरते थे, कहाँ बात-बात पर धमकी !'

वीरो ने छोटी भाबी को गले लगाकर कहा—'पहले और बात थी, तू पराई चीज़ थी, तुझ पर हक़ नहीं था, तेरी खुशामद थी। अब तू है अपनी—समझी पागली ?' तू क्या पराई बनकर रहेगी ? बोल ?'

मज़हब

कृष्णा ने एक किताब में पढ़ा था—मास्को में रूसियों ने सैंकड़ों गिरजे, मस्जिदें और सैनागोग (यहूदियों के उपासना स्थान) गिरा दिये और शेष के ऊपर मोटे अक्षरों में लिख दिया कि मजहब जन समुदाय को अकर्मण्यता में ग़र्क़ कर देने वाला अफीम का नशा है (Religion is the opium for masses) और उन्हें स्कूल, क्लब और अजायब घरों में बदल दिया है।

रूस की नई सभ्यता में उसका अडग विश्वास था। भारत के अवनति के गढ़े में गिरकर सड़ते रहने का कारण वह भारत में मजहब के मारात्मक नशे की व्यापकता को ही समझता था। इस व्याधि को जड़ से दूर करने के लिये उसका मन छटपटा उठता था।

मजहब और उसके चिन्हों के प्रति उसकी वितृष्णा इतनी बढ़ गई कि उसे उनकी छाया भी असह्य थी। शिखा सूत्र वह छोड़ ही चुका था, अब उसे धोती में भी साम्प्रदायिकता की झलक दिखाई देने के इसलिए उसने उसे भी छोड़ निकर पहनना शुरू कर दिया। मजहब का इतना भयंकर शत्रु होते हुये भी वह प्रयाग की अर्धकुम्भी पर गया था—परलोक प्राप्ति के लिए नहीं, बल्कि परलोक—परायण जन समूह की मूर्खता देखने के लिये।

दोपहर का समय था। वह अपने साथियों सहित त्रिवेणी से लौट रहा था। उसी समय देखा, एक औरत भीड़ से जरा परे खड़ी मुँह छिपाये

फूट फूट कर रो रही है। उस ग़रीब हिन्दू स्त्री ने कुछ संकोच से उन तीनों की ओर देखकर कहा कि वह अपने साथियों से बिछुड़ गई है, कोई उसे उसके आदमियों के पास पहुँचा दे नहीं तो वह भटक भटककर मर जायगी, मुसल्मान गुण्डे उसे सुबह से परेशान किये हैं।

पन्ना ने कहा यह देखो मज़हब की भलाई। यह औरत यहाँ परलोक कमाने आई है और पण्डों और गुण्डों के हाथ अपनी इज्जत खोया चाहती है। ताज्जुब नहीं जो प्राण भी खोये।

अपने दोनों साथियों की अपेक्षा पन्ना के दिल में अधिक सहानुभूति थी। उसने औरत से पूछा—'तुम्हारे आदमी कहाँ ठहरे हैं ?'

औरत ने आँखें पोंछते पोंछते सिसक कर उत्तर दिया—'वहाँ धर्म-शाला में।'

धर्मशाला का नाम पूछने पर उसने घबराकर कहा—धर्मशाला का नाम तो वह नहीं जानती, धर्मशाला बहुत बड़ी है और बाजार में है।

इस परलोक की कामना से पागल, स्वार्थी भीड़ में, जहाँ प्रत्येक दूसरों को धक्का देकर स्वर्ग में स्थान पाने के लिए विह्वल है, या उचक्के आततायी भोले भालो का आखेट खेलने की ताक में फिर रहे हैं, इस अबला की क्या अवस्था होगी; यह सोच पन्ना का मन पिघल गया। उसने सोचा इन लाखों धर्मध्वजियों की अपेक्षा वह स्वयँ कहीं अधिक पुण्यात्मा है जो निस्वार्थ भाव से एक अबला की सहायना करने के लिए कष्ट उठाने को तैयार है। वह जरूर उस औरत को उसके आदमियों से मिलादेगा। न हो वह उसे धर्मशाला-धर्मशाला घुमाकर सभी धर्मशालायें दिखा देगा।

वह उसे उदासियों के धर्मशाला में लेगया परन्तु वहाँ उस औरत का डेरा न मिला। उसने सोचा औरत बेचारी पैदल कहाँ तक चलेगी ?

एक टाँगा उसने किराये कर लिया और उसे स्टेशन की धर्मशाला ले गया। परन्तु वह धर्मशाला भी उस औरत ने नहीं पहचानी। इसके बाद दूसरी, फिर तीसरी, चौथी कितनी ही धर्मशालाएँ वे घूम चुके, पर कुछ पता न लगा और सूर्यास्त हो चला।

ताँगे वाले ने कहा, उसका घोड़ा सुबह से जुता है, थका और भूखा है आखिर उसे खोलना भी है। ताँगा छोड़ वह औरत को पैदल ही ले चला। मन में सहानुभूति और सेवा का प्रचुर भाव होते हुए भी वह अब घबराने लगा—यदि कोई ठिकाना न मिला तो वह इस औरत को कहाँ रखेगा?

आखिर उसे एक उपाय सूझा। स्त्री से बोला—'चलो तुम्हें सेवा-समिति में पहुँचा दूँ, वे लोग तुम्हें तुम्हारे शहर और तुम्हारे घर तक पहुँचा देंगे।

इधर इतनी देर तक तांगे पर पन्ना के साथ घूमने के बाद ज्यों-ज्यों पन्ना की व्याकुलता बढ़ती गई स्त्री की घबराहट मिट एक प्रकार की लापरवाही आती गई।

सेवा-समिति में पहुँचाये जाने की बात सुन स्त्री का रूप एकदम बदल गया।

आँखें निकाल, आवाज़ को ऊँचा कर और दायें हाथ से पन्ना की कलाई थाम, औरत ने कहा—"हैं? अब कहाँ जा रहा है? मुझे बेघर बार किया, अब मुझे धोखा देकर कहाँ जाना चाहता है। चाहे मैं मर जाऊँ, अब तुझे मैं कभी नहीं छोड़ सकती।"

स्त्री की बात सुन पन्ना के सिर पर बिजली गिर गई। वह भौंचक हो उसके मुँह की ओर देखने लगा।

स्त्री ने पन्ना की कलाई न छोड़ी बल्कि और खीस निकाल कर बोली—

"ओ हो, अब कैसा भोला बन गया, मेरा सारा जेवर खाकर ?"

पन्ना के रहे सहे होश उड़ गये ।

मर्द औरत में झगड़ा होता देख आसपास से लोग कौतूहल वश इकट्ठे होने लगे । लोगों का तमाशा बन कर और बुरी गत कराने की अपेक्षा औरत से एकान्त में झगड़ना उसने अच्छा समझा और वह उसे ले एक ओर को चल निकला । वह परेशान था, परोपकार करने आकर वह अच्छी मुसीबत में फँसा । क्या उसे औरत भगाने के अपराध में जेल काटनी पड़ेगी ?

औरत चलती जाती थी, लेकिन ज़बान उसकी एक क्षण को भी थमना न चाहती थी । वह एक ही टेर लगाये थी—"मेरा हज़ार रुपये का ज़ेवर खालिया, अब गंगा निहालने के बहाने लाकर मुझे यहाँ छोड़ना चाहता है । मेरी इज्जत भी ली, मेरा रुपया भी लिया ।"

पन्ना का सिर घूम रहा था, वह उस औरत के साथ घूमता घूमता कटरा मुहल्ले में आ पहुँचा ।

एक तरफ़ हलवाई की दुकान में ताज़ी पूरियाँ निकलने की सुगन्ध उड़ रही थी—औरत से न रहा गया । कड़क कर बोली—"सुबह से घूमते-घूमते पैर रह गये, पेट में एक दाना न गया, कुछ खाने को भी देगा या भूखा मारेगा ?"

पन्ना पर औरत का आतंक बैठ गया था । उसने उसकी ओर देख कर कहा—'क्या खायेगी ?'

औरत ने झुंझला कर कहा—"पूरी ले ले, और क्या चौका लगाने बैठूंगी ? मरने को तो जगह है नहीं ।"

'चौका' का नाम सुनते ही पन्ना का मस्तिष्क साफ़ हो गया । इस शब्द को लेकर उसने कितनी ही बहसें की थीं । उसने भी गरम होकर

जवाब दिया—"पूरी खायगी ऐसी साहूकार की बेटी है न। जो मैं खाऊँगा सो तू खायेगी, चल नानबाई के यहाँ से रोटी गोश्त ले दूँ।"

औरत पर मानो घड़ों पानी पड़ गया। पल भर पन्ना के मुँह की ओर देख कर, वह राह चलतों को पुकार कर चिल्लाने लगी—"अरे देखो ! कोई, यह मुंडचिरा मुसलमान मेरे पीछे पड़ा है।"

सब कुछ करके भी मुसलमान के साथ रह अपना धर्म गँवाना औरत को मंजूर न था।

कुछ लोगों ने पुकारा—'कौन है ?' पन्ना सिर पर पैर रख भाग खड़ा हुआ।

एक गली में किसी को अपना पीछा न करते देख उसने दम लिया। माथे का पसीना पोंछ गली के दूसरे सिरे पर पहुँच एक ताँगे वाले को बुला वह अपने डेरे पर पहुँचा।

× × ×

आधी रात में बरबाद सी हालत में उसे लौटते देख साथियों ने पूछा—'क्या हुआ ?'

कम्बल में मुँह लपेटे हुए पन्ना ने कहा—'बस पूछो मत !'

साथियों ने पूछा—'आखिर कुछ तो कहो !'

पन्ना ने उत्तर दिया—"सब कुछ कहूँगा परन्तु अब मज़हब के खिलाफ़ एक शब्द न कहूँगा आज उसी से जान बची।"

'कर्मफल'

बहुत जाड़ा था । बहुत ज़ोर का पानी पड़ रहा था । बाज़ार और गली कूचे सूने पड़े थे । बिना बहुत जरूरी काम के कोई मकान के बाहिर निकलना न चाहता था ।

जिन लोगों के मकान नहीं, सर्दी और तपिश में जिन लोगों के लिए 'ईश्वर' का आकाश या म्युनिसिपैलिटी के लगाये पेड़ ही आश्रय हैं, वे लोग भी जहाँ-तहां भले लोगों के मकान या हवेलियों की आड़ में छिप कर हवा-पानी से सिर बचाने की कोशिश कर रहे थे । सेठजी की हवेली-के लम्बे-चौड़े सूने बरामदे में समीप के नीम के नीचे से एक बेघरबार का 'जीव' सरक आया । उसके बाद दूसरा, तीसरा इसी तरह छः सात 'जीव' आ जमा हुए । बरामदे के दाईं ओर के कोने में जहाँ बौछाड़ न आसकने से जगह बिलकुल खुश्क थी, वहाँ पहले आकर जिसने अपना टाट का टुकड़ा बिछा लिया था उसे दूसरे 'जीवों' का वहाँ पर आकर घपला करना असह्य हो रहा था । लेकिन बाद में आये हुओं के लिये तेज हवा और बौछाड़ से बचने की इच्छा न करना भी असम्भव था । वे पहिले आये हुए व्यक्ति के अधिकार को उसके पीछे किसी प्रकार की शक्ति न होने के कारण मानने के लिए तैयार नहीं थे । इन बेवकूफों को इतनी तमीज़ नहीं थी कि यदि दखल के अधिकार को न माना जाय तो जमीं-दारी की सत्ता भी नहीं रह सकती ।

झगड़ा होने लगा । चीख-पुकार मचने लगी । मां-बहन को ले तरह-

तरह की ललकार सुनाई पड़ने लगी। इस सब के ऊपर गोद में छिपे हुए सर्दी और भूख से बिलखते हुए बच्चे अपनों पर होते हुए अत्याचार के प्रतिकार में चिल्लाने लगे।

सेठ जी अँगीठी के सामने बैठे जरूरी काग़जात देख रहे थे। शोर से उद्विग्न होकर उन्होंने द्वारिका धीमर को ललकारा—"यह सब क्या घपला हो रहा है ?"

अनिच्छा से रजाई छोड़कर द्वारिका ने बरामदे में झांका। क्रोध में उसने डण्डा उठा, गालियां देते हुए उन सब अवाँछनीय बदमाशों को वहाँ से खदेड़ दिया!

कोई भागकर किसी बन्द दुकान के छज्जे के नीचे जा बैठा; कोई किसी ड्योढ़ी की आड़ में हो गया। लेकिन बिंदी की टांगों में इतना जोर बाक़ी न था। तिसपर गोद के बच्चे का बोझ। टाट के टुकड़े में लिपटे बच्चे को पेट से चिपकाये वह फिर दस कदम पर नीम के पेड़ के तने से सटकर जा बैठी।

× × ×

अंधेरा खूब घना हो गया था; पर पानी के रुकने का कोई आसार नहीं था। तिस पर पछवा खूब तेज बह रही थी। रोते-रोते बिन्दी के बच्चे का गला रह गया, पर उसकी हिचकी बन्द न होती थी। पिछली सांझ से बच्चे के मुँह में कुछ नहीं गया था। बारिश के मारे कोई 'भला आदमी' घर से बाहर निकलता ही न था, बिन्दी को कोई पैसा-धेला कहाँ से मिलता? मुँह में अन्न गये बिना उसकी छाती में दूध कहाँ से आता? बच्चा अपने एक निर्बल दाँत से छाती को काट कर पेट भर लेने की कोशिश दिन भर कर चुका था। परन्तु न छाती में ही कुछ था और न दांत में ही शक्ति थी। तिस पर वह जाड़ा, जो ईंट-पत्थर को

दीवारों को भेद, मोटे मोटे लिहाफों के भीतर पहुँच कर भी शरीर के रोंगटे खड़े किए देता था।

बिन्दी का बच्चा रह रहकर चिड़िया के बेपर चूज़े की तरह मुंह बा देता था। न उसमें से रोने की ही आवाज़ निकल पाती थी, न उसमें जाने के लिए ही कुछ था। बिन्दी अधीर हो पुचकार पुचकार उसे अपने शरीर की गरमी से गरम रखने की चेष्टा कर रही थी। यदि माँ के स्नेह में बच्चे को जाड़े से से बचा लेने की शक्ति होती, यदि उसमें बच्चे का पेट भर देने की सामर्थ्य होती ?

बिन्दी न डाक्टर थी न वैद्य, लेकिन बच्चे के दरद को माँ का हृदय अनुभव न करेगा तो कौन करेगा ? जब म्युनिसिपैलिटी के घण्टाघर ने इस हवा-पानी में भी भले आदमियों को यह सूचना देनी जरूरी समझी कि दस बज गये हैं, सोने का समय हो गया है, उस समय बिन्दी को सहसा ऐसा जान पड़ा, मानों उसकी गोद सूनी हो गई। उसकी गोद का बोझ बे मतलब होगया, उसके हृदय से एक मर्म भेदी चीख निकल पड़ी वह सिर और छाती पीट पीट कर रोने लगी। सुनसान रात में आराम के वक्त उसके क्रन्दन से भले आदमियों की नींद खराब न हो इसलिए पछवा उसकी चीखी पुकार को उड़ाये लिऐ जा रही थी, पानी उसे दबाये दे रहा था।

× ×

नीम के ठीक नजदीक ऊपर दुमंजिले पर जो खिड़की थी, वहीं सेठानी जी के सोने का कमरा था। सेठानी जी नींद न आने के कारण दुखित हो नींद की प्रतीक्षा कर रही थीं। समीप ही उनकी बिटिया सो रही थी। कुछ दिन से बीमार सी रहने का कारण बिटिया दुबला गई थी। गाल ढीले पड़कर आँखें कुछ कुछ दिखाई देने लगी थीं। सेठानी जी बिटिया की कमजोरी के कारण परेशान रहती थी। नीचे से बेवक्त

रोने की आवाज सुनाई देने के कारण उन्हें बहुत बुरा मालूम हुआ। चिल्ला कर उन्होंने कहा—'अरे कोई है,तो देखो नीचे यह कौन स्यापा डाल कर अपनों को रो रहा है ? बिटिया की जरा आँख लगी है उसे क्या सोने नहीं देगा ?'

माँ की कोमल आवाज से नन्हीं की नींद उचट गई। उसने पूछ—'क्या है माँ ?'

माँ ने पुचकार कर कहा—'कुछ नहीं मेरी रानी बेटी सोजा।'

बेटी ने पूछा—कोई रोता है क्या मां ?

बटी को पुचकार कर माँ ने कहा—'तू सोजा बेटी, कोई रांड नीचे बाजार में अपने करमों को रो रही है। तू सोजा, मैं अभी भेज कर उसे निकलवाये देती हूँ।'

नीचे से रोने की आवाज़ आ रही थी। सेठानी जी ने उन्हें और उनकी बिटिया को यों दुख देनेवाले के विरुद्ध भगवान को दुहाई दी और द्वारिका को पुकारा।

नीम की तरफ से द्वारिका की ललकार सुनाई दी—'चल हट रांड यहाँ से, तमाशा करने आई है, नहीं एक डण्डे से सिर तोड़ दूँगा।'

नन्हीं ने माँ को सम्बोधन कर कहा—'यह कोई बड़ी पापन होगी माँ जो ऐसे रो रही है।'

'और क्या बेटी'—कहकर माँ ने बेटी के धर्मभाव का अनुमोदन किया और उसे सुलाने के लिए उसका सिर सहलाने लगी।

अपने बेमतलब बोझ को छाती से चिपटाये बिन्दी रोती, चीखती दूर चली गई। ऊपर लिहाफ में लेट कर सेठानी जी भगवान का नाम लेती हुई भगवान से भिक्षा माँगने लगी—'मेरी बेटी का कष्ट दूर करो भगवान और यों जिसने बेटी की नींद बिगाड़ दी उसका सत्यानाश हो।'

दर्पण—

मेरी स्त्री का सिद्धान्त है कि संसार के सभी महापुरुषों की महानता का श्रेय है, उनकी धर्म-पत्नियों को। मैं एक महापुरुष नहीं बन सका, इसका कारण अन्य व्यक्तियों की दृष्टि में चाहे मेरी सैकड़ों न्यूनताएँ हों परन्तु श्रीमती जी की दृष्टि में केवल एक ही कारण है, और वह यह, कि मैं पूर्ण रूप से श्रीमती जी का अनुगत—जैसा कि उनकी राय में होना चाहिए, नहीं हो सका।

चित्रा के विषय में जब श्रीमती जी ने हम लोगों के मकान में ऊपर के दो कमरे उसे रहने के लिए देने का प्रस्ताव किया तो उसमें मुझे कुछ एतराज़ न था, बल्कि प्रसन्नता ही थी। चित्रा बंगाली युवती थी। इसलिए कुछ तो कौतुहल से और कुछ उसके भोले चेहरे और आयत लोचनों के समीप रहने से किसी दिन उसीके मुख से उसके जीवन की मर्म-कथा सुनने की आशा थी।

प्रसन्नता प्रकट न करने का यह भी कारण था कि श्रीमती जी किसी आशंका से चित्रा को स्थान देने के लिए निरुत्साहित न हो जांय। श्रीमती जी के प्रस्ताव करने पर मैंने इतना ही कहा—'क्या झंझट सिर लोगी; उसके देवर हैं, जेठ हैं, शायद मां-बाप भी हों। जिसका अपने घर निर्वाह न हुआ, वह तुम्हारे घर ही क्या शान्ति से रह सकेगी।

मेरी आशा के अनुकूल श्रीमती जी ने झनक कर कहा—'यही तुम्हारे उदार विचार हैं? तुम नहीं जानते वे सब लोग कितने कट्टर

हैं ? जब 'रतन' के जीते जी उन लोगों ने बेचारी से सीधे मुँह बात नहीं की तो अब उसे क्या झेलेंगे ? वह तुम्हें क्या तकलीफ़ देगी ? ऐसी सुशील लड़की है बेचारी, मुझे तो उसके प्रति बहुत सहानुभूति होती है। यहाँ रहेगी उसका भी मन लगा रहेगा,तुम्हारी 'किरण' को भी दो अक्षर बतायेगी, तुम्हारा क्या हर्ज है ?

पराजय स्वीकार कर मैंने कहा—'जैसे तुम्हारी इच्छा।'
मुझ पर झुँझला सकने का और मुझे उचित मार्ग पर ला सकने का सुयोग पाकर श्रीमती जी को सन्तोष हुआ। चित्रा हमारे यहाँ आकर रहने लगी।

चित्रा कौन थी ?

रतन रिश्ते में मेरा साला था। वह भी शायद श्रीमती जी के मामा का रिश्ते में भाञ्जा होने के नाते से। तीन-चार बरस वह कानपुर में व्यापार के सिलसिले में रहा था। वहीं उसने एक युक्तप्रान्तवासी बंगला युवित से गंधर्व-विवाह—जिसे आजकल की कचहरी की भाषा में सिविल-मैरेज कहते हैं—कर लिया था। लाहौर सपत्नीक लौटने पर हम लोगों की बिरादरी ने उसका स्वागत नहीं किया।

न करे ! रतन जवां मर्द था। उसने किसी की कुछ परवाह न कर बिरादरी की छाती पर मूँग दल, एक किराये का मकान ले, अपना सुहावना जगत बसा लिया।

रतन से मेरा कुछ विशेष सरोकार न था। परन्तु इस जोड़ी का निगूढ़ प्रेम और आत्म निर्भरता देख मुझे उनके प्रति सहानुभूति थी। वे कभी-कभी हमारे यहाँ आते-जाते भी थे। परन्तु हाय भाग्य ! रतन बीमार हुआ, हालत खराब हुई और मर गया।

मैंने अपनी स्त्री से सुना है, बीमारी के छः मास में चित्रा ने रतन

की वह सेवा की, कि कोई क्या करेगा। यही है चित्रा का परिचय।

जितना मैं देख पाया उससे यह कह सकता हूँ कि लड़की के व्यवहार में सरलता और शालीनता भरी हुई थी। यहाँ तक कि मेरी श्रीमती जी को भी उसमें अभिमान की गंध न आई। उनके मुख से मैं सदा ही चित्रा की प्रशंसा सुन पाता और किरण तो मुझ से कई दफ़े कह चुकी थी—'पिता जी हम मौछी की बेटी हैं।'

एक दिन बिलकुल एकान्त पा, श्रीमती जी ने मेरे कान के समीप मुख लेजाकर कहा—'देखो तो, आखिर हरबात की एक सीमा होनी चाहिए।'

मैंने भी उसी तरह पूछा—'क्या बात है?'

श्रीमती जी ने उत्तर दिया—'मैं तो हैरान हूँ, मैं स्वयं यह नहीं चाहती कि विधवायें सदा शोक-वेश बनाकर रहें परन्तु यह चित्रा तो हद कर रही है। आखिर वह विधवा है। नहीं रहा जाता तो विवाह ही करले। उसे डर किसका है। बिरादरी का भी झंझट नहीं।'

कुछ न समझ मैंने पूछा? 'क्यों बात क्या है, मैंने तो उसे कभी सादगी से बाहिर कदम रखते नहीं देखा। हाँ, अलबत्ता सफ़ाई और ढंग से जरूर रहती हैं।'

श्रीमती जी ने मेरे इस नम्र विरोध से खीझकर जवाब दिया—

'हाँ तुम बहुत जानते हो, न? मैंने कई दफे देखा है, आइने के सामने घण्टों बाल काढ़, सिंदूर डाल, बेंदी लगाकर, साढ़ी कंधों पर रखे बैठी अदा से मुस्कराया करती है। कई दफ़े मैं ऊपर गई और उसे इस तरह देख लौट आई। कई दफे जाँचने के लिए मैंने किरण को भेजा—जा देख मौसी क्या कर रही है? उसने भी आकर कहा—मौसी बाल काढ़ रही हैं, बोलती नहीं।'

रहस्य को न समझ मैंने कहा—'होगा, पर मैंने तो एक दिन भी उसमें हाव भाव की चंचलता नहीं देखी।'

पर नारी की प्रशंसा करने की मेरी भूल का परिणाम तुरन्त मेरे सामने आगया। श्रीमती जी ज़रा तीव्र स्वर से बोलीं—

'मैंने यह तो कहा नहीं कि वह गली गली लोगों को रिझाती फिरती है। अकेले छिपकर जो वह घण्टों आइने के सामने झूमा करती है, उसे लुकने छिपने की क्या ज़रूरत ? कोई रोकता है ?'

मैंने पूछा—'आखिर कुछ तो मतलब होगा ?,

श्रीमती जी ने कहा—'मतलब क्या रूप का गुमान है।'

मुस्कराकर मैंने जवाब दिया—'रूप, अलबत्ता कुरूप नहीं है, लेकिन तुम्हारे सामने वह क्या गुमान करेगी ?

श्रीमती जी की आँखों में चमक आगई और हृदय की उदारता पिघल पड़ी, बोलीं—'वह बेचारी अपना रूप किसे दिखायेगी ? अकेले में ज़रा दिल बहलालेती है, क्या हर्ज है।'

× × ×

मैं उपरोक्त चर्चा को भूल चुका था कि एक रोज किरण चित्रा के कमरे से एक आइना लिए हुए आई, और कहने लगी—'माँजी, मौछी का छीछा हम लेंगे।'

उसकी माँने धीरे से मेरे कान में कहा,—'इसी आइने में देख वह सिंगार किया करती है—वह सिंगार में लगी होगी यह शैतान आइना उठा लाई।'

प्रकाश्य में किरण को डाँटकर श्रीमती जी बोलीं—'शैतान ! मौसी का शीशा क्यों उठा लाई।'

दूसरे साँस में पुचकार कर कहा—'आ रानी बेटी, मौछी का शीशा

दे दे, मैं तुझे इससे अच्छा ला दूँगी ।

किरण अपनी राय बदलने के लिये तैयार न हुई । आइना दरअसल सुन्दर था । पान की शकल का या जिसे हाटशेप कहते हैं । कछुए की खपड़ी में जड़ा हुआ, दल खूब मोटा और पानी साफ़ ।

ऊपर से चित्रा ने आ, मुस्कराकर कहा—'आओ बेटी हम तुम्हें इससे अच्छा शीशा दें ।'

किरण पर इस बात का भी कुछ असर न हुआ । आइने को दोनों हाथों से छाती से चिपकाकर वह ठमकती हुई मेरी कुर्सी के पीछे हो गई । मैंने भी समझाया, पर कुछ असर न हुआ ।

कहा,—'किरण अपने आपही हमें शीशा दे आयेगी । आओ किरण चलें' और व सीढ़ियां चढ़ने लगी ।

चित्रा गई ही थी कि किरण के हाथों से शीशा फिसल पड़ा और फर्श पर गिर उसके टुकड़े बिखर गये । किरण डर गई, उसकी माँ का चेहरा फ़क हो गया । श्रीमतीजीने मेरी ओर देखकर कहा,—'अब !'

मैं स्वयं चिन्तित था । उपाय केवल एक था कि तुरन्त वैसा ही आइना बाजार से लाया जाय परन्तु वह कहाँ का बना है और कहाँ मिल सकेगा ? यह देखने के लिए मैंने उसके कछुए की खपड़ी के फ्रेम को उठाया । उस पर हिन्दी में कुछ गुदा हुआ था । पढ़कर मैं हतचेतन-सा रह गया ।

किरण की माँ को भी दिखाया उसपर गुदा था,—'यह आइना मेरा हृदय है । जब तुम इसमें अपनी सुन्दर छवि देखो, तो समझना मेरे हृदय में बसी अपनी मूर्ति को देख रही हो—रतन'

किरण की मां, की आँखों में आँसू आ गये । मैंने सोचकर कहा—

'इसीलिये वह मुस्कराकर, सिंदूर लगाकर सदा इस आइने के सामने जाती थी।'

उपाय कुछ नहीं था। नहीं जानता किन शब्दों में श्रीमती जी ने चित्रा से क्षमा मांगी और अनुताप प्रकट किया।

चित्रा इस दिन के बाद से बहुत उदास रहने लगी। यहां तक कि किरण को गोद में लेकर भी वह न हंस पाती। जब किरण उससे जा चिपटती तो वह केवल उसके सिर पर स्नेह से हाथ फेर देती।

× × ×

इसके बाद वह बीमार सी रहने लगी। वह बिस्तर पर नहीं लेटी परन्तु सूखती गई। एक दिन वह जाने के लिये तैयार हो बैठी।

उसने कहा—'अमुक जगह लड़कियों की पाठशाला में जगह खाली है। उसमें दिन बिताने की सहूलियत हो सकेगी। बैठे बैठे दिल बहुत घबराता है।'

प्रति सोमवार को श्रीमती जी उसे पत्र लिखती थी और उसका भी उत्तर आता था इस तरह पन्द्रह पत्र आये सोलहवें का उत्तर नहीं आया।

प्रायः तीन सप्ताह की देर से एक बड़ा सा लिफ़ाफ़ा—सम्राट के कार्य पर On His Majesty's Service आया।

खोलने पर उसमें श्रीमती जी का लिखा चित्रा के नाम का पत्र हस्पताल को रिडाइरेक्ट किया हुआ निकला और एक पत्र सिविल-सर्जन के हस्ताक्षर से उसके साथ था।

साहिब ने लिखा था—

'ति.........को 'श्रीमती—रतन' हस्पताल के स्त्री भाग में दाखिल हुईं। उन्हें हृदय रोग की बहुत बढ़ी हुई शिकायत थी। अठारह दिन बीमार रह कर उनका देहान्त हो गया। 'श्रीमती—रतन' ने अपने किसी

सम्बन्धि या मित्र का पता नहीं दिया था इसलिये सूचना दिये जाने का कोई उपाय न था। उनका शव म्युनिसिपैलिटी को सौंप दिया गया था। मृतात्मा के सम्बन्धियों के प्रति हमारी पूर्ण सहानुभूति है।' दः

× × ×

उस रोज़ फिर हमें दर्पण की बात याद आई और उसके साथ ही उस दर्पण के सामने एकान्त में चित्रा के सिंगार की भी बात याद आई।

परलोक

मल्ली की माँ ने कहा—"हां हां, बाबा ! ऐसा लड़का नहीं देखा।"

मल्ली की माँ का कहना ठीक है। वह इसी प्रतीक्षा में है कि किस दिन मट्टू को छटा बरस लगे और वह उसे स्कूल भेजकर चैन का साँस ले।

मट्टू पाँचवें बरस में है और मल्ली आठवें में परन्तु उसे हर बात में भाई से हार माननी पड़ती है, उसका अत्याचार सहना पड़ता है।

माँ का आंचल धरे मट्टू किसी बात के लिए जिद कर रहा था और मल्ली छत पर खड़ी पतंगों का तमाशा देख रही थी। एक पतंग आकर गिरी; उल्लास से कुलक कर मल्ली ने चिल्लाया—'अहा जी पतंग' ?

आवाज सुनते ही मट्टू माँ की आंचल छोड़ गोली की तरह ऊपर पहुँचा। 'मैं लूँगा, मैं लूँगा' कह कर वह बहिन से पतंग छीनने लगा। मल्ली पतंग को दोनों हाथों से सिर के ऊपर थाम कर सहायता के लिए चिल्लाने लगी—'मां, मां, मट्टू पतंग छीन रहा है।'

चीखों, पुकार की कुछ भी परवाह न कर मट्टू मल्ली की धोती और चोटी खींच-खींचकर उसे हाथ नीचे करने के लिए विवश करने लगा। मल्ली का बाबेला सुन, मां ने पुचकार कर मट्टू को नीचे आने के लिए कहा, बहिन को तंग न करने का उपदेश दिया, फिर पीटने की धमकी दी।

इस सब की कुछ भी परवाह न कर मट्टू पतग लेने के लिए मल्ली के बाल नोचने लगा, उसके बदन में चिकोटियां भरने लगा।

आखिर मल्ली रो पड़ी। माँ ने पुचकार कर कहा—'मेरी रानी बेटी तू दे दे, पतंग इस दुष्ट को दे दे, तू मेरी रानी बेटी है, यह बड़ा चण्डाल है। अच्छा आजाने दे इसके पिता जी को, इसे ऐसा पिटवाऊँगी कि सारा बदन सूज जायगा। शाबाश, यह इसे दे दे। तू बड़ी रानी है। तुझे मैं बाज़ार से मैं नई बड़ी सी पतंग मंगवा दूँगी।

मल्ली ने माँ का कहना मान पतंग दे दी। माँ ने कहा—'मल्ली बड़ी अच्छी है, इसे रबड़ की गुड़िया ले दूँगी'। लड़की रोती हुई माँ के पास आ बैठी और मट्टू उछल उछल कर पतंग फाड़ने लगा।

एक दिन नवम्बर के महीने में जगन ने बेमौसिम के बहुत बढ़िया चार आम भेजे। मट्टू टोकरी को देखते ही उसे पकड़ बैठा। माँ ने हज़ार यत्न किया कि लड़के का ध्यान बंट जाय और आमों को छिपादे और मल्ली के स्कूल से लौटने पर दोनों को एक साथ दे। सब छल-बल कर माँ हार गई। मट्टू ने टोकरी को तब छोड़ा जब दोनों हाथों में एक एक आम ले लिया। शाम को मल्ली के स्कूल से लौटने पर बड़े यत्नसे। रखा हुआ एक आम माँ ने निकाल कर उसे दिया और कहा—'जा उधर जाकर खा, कहीं वह शैतान न आ जाय।'

परन्तु मट्टू से मल्ली को कौन बचा सकता है? न जाने कहाँ से झपटता हुआ वह आया और आम मल्ली के हाथ से छीन लिया।

मल्ली चिल्ला कर रोने लगी। माँ ने रसोई में से बहुत डांटा, धमकी दी, रस्सी से बांध कर पीटनें को कहा, फटकारा, जितनी देर में वह घटनास्थल पर पहुँची, मट्टू ने हाथ मुंह और कपड़े सब खराब कर आम समाप्त कर दिया। मल्ली करुण स्वर में रोने लगी।

सुन कर मुझे भी बहुत दया आई। हमने मल्ली को बहुत प्यार किया, पुचकारा और बहुत सी मिठाई और फल ला देने का वायदा कर उसे बहला दिया।

अगले दिन मल्ली गुड़िया का गीत गा गा कर अपनी नई गुड़िया को रंगीन पोषाक पहना रही थी। मट्टू को गुड़िया पसन्द आ गई। दोनों हाथों से गुड़िया को छाती से लगा मल्ली ने गुड़िया देने से इन्कार कर दिया। मट्टू ने धमाधम मल्ली की पीठ पर घूँसे जमाने शुरू कर दिये।

रोना सुन माँ झपटी हुई आई; यह देख मट्टू फर्श पर लोट गुड़िया लेने के लिए ज़िद करने लगा। समझाने बुझाने का कुछ फल न हुआ, आखिर गुड़िया मट्टू को दिला दी गई और मल्ली को नये नये खिलौने मंगा देने का वायदा कर बहला दिया गया।

× × ×

मल्ली सब अन्याय अत्याचार सहती है, उसे मिलता है केवल वायदा और 'आश्वासन'।

मट्टू वायदे या आश्वासन की कुछ चिन्ता नहीं करता जो देखता है तुरन्त झपट लेता है। वह मौज करता है और मल्ली बड़ी बड़ी कातर आंखों से ताक-ताक कर आशा करती रहती है।

मैं सोचता हूँ इन दोनों में कौन सफल है?

मल्ली की मां कह रही थी जी तुम इस शैतान को स्कूल में भरती करादो'—

हंस कर मैंने कहा—'अभी रहने दो, कमजोर हो जायगा।' प्रत्युत्तर में उसनें कहा ओफो ऐसा शैतान लड़का! और शैतान सुडौल लड़के को पेट से जन्म देने के अभिमान में उसका हृदय फूल उठा।

उसी समय नीचे पुकार सुन उसने कहा—'बाबा हा, एक तो इन फ़क़ीरों के मारे बैठना नहीं मिलता। ननकू कहदे—'अभी जाय, हाथ खाली नहीं है।'

ननकू ने मालिकन का संदेशा छत पर से ही सुना दिया। उसके उत्तर में फ़क़ीर ने नीचे से कहा—'माई तेरे मालिक की खैर, दूध पूत की खैर, यहाँ ताँबे का पैसा दे रब तुझे सोने का पैसा देगा।'

दूध पूत की खैर की बात सुनकर मल्ली की माँ की कठोरता पिघल ही रही थी कि ताम्बे के पैसे के बदले सोने के पैसे की बात सुनकर वह बह चली। उसने कहा—'भाई ननकू अभी थक कर बैठी हूँ, जा उसकी झोली में चुकटी डाल आ।'

देखता हूँ, मेरी आठ बरस की भोली भाली लड़की ही भविष्य की आशा सांत्वना और आश्वासन पर नहीं जीती। उसकी चतुर पक्की माँ भी भविष्य की सांत्वना का भरोसा रखती है। फ़क़ीर को चुटकी देती है, ब्राह्मण भोजन कराती है, अनाथालय को चन्दा देती है, व्रत रखती है और मल्ली की माँ ही क्या; हम सब भारतवासी ही भविष्य की आशा पर जीते हैं।

परलोग में सुख भोग करेंगे, अगला जन्म सुखमय होगा, इसी आशा में हम इस जीवन की कर्दय अवस्था को सहजाते हैं। सांसारिक पदार्थों में आसक्त होने से परलोक प्राप्ति में बाधा होगी, इसलिये हम उस ओर ध्यान नहीं देना चाहते। मन में स्वाभावत: समृद्धि की इच्छा होती है परन्तु हम उसे समझाते हैं, लिप्त होना अच्छा नहीं। मार पड़ती है तो कहते हैं,—भगवान देखते हैं, समझेंगे।

देखता हूँ यह सम्पूर्ण जाति ही मल्ली की भांति भविष्य पर जी रही है। और दूसरे लोग (यूरोप) मद्दू की भांति आज के मतलब की बात सोचते हैं।

सोचता हूँ—भविष्य के हज़ारों वायदों को पाकर भी जैसे मल्ली मट्टू की अपेक्षा कभी अधिक सफल न हो सकेगी, उसी तरह भगवान् भी भारतवासियों की भविष्य-आशा का क्या करेंगे ?

यूरोप को देखकर उनका मन प्रसन्न ही होगा और जिस तरह मैं मट्टू को देखकर कुछ नहीं कह सकता, उसी तरह भगवान यह यूरोप को कहेंगे—'शाबाश बेटे।'

और भारत को पुचकार कर कहेंगे, घबराओ नहीं तुम्हारे लिये परलोक है।

लेकिन परलोक में भी—अगर परलोक है—तो वहाँ भी यही भगवान् होंगे और यूरोप होगा मट्टू और हम होंगे मल्ली।

जिससे मनुष्य सर्वापेक्षा अपना समझ कर भरोसा करता है, जब उसी से अपमान और तिरस्कार प्राप्त हो, तब मन किस प्रकार वितृष्णा से भर जाता है; कैसे एक दम मर जाने की इच्छा होने लगती है; इसे शब्दों में बता सकना सम्भव नहीं।

दिलीप ने हेमा को कितनी स्वतन्त्रता दी थी; कितना वह उसका आदर करता था; जितनी आन्तरिकता से वह उसके प्रति अनुरक्त था? बहुत से लोग उसे 'अति' कहेंगे। इस पर भी जब वह उसे सन्तुष्ट न कर सका और हेमा केवल दिलीप के उसकी सहेली के साथ दूसरे 'शो' में सिनेमा देख आने के कारण रात भर रूठी रह कर सुबह उठते ही माँ के घर चली गई, तब उसके मनके क्षोभ का अंत न रहा।

सितम्बर का अन्तिम सप्ताह था। वर्षा का समय बीत जाने पर भी दिन भर पानी बरसता रहा। दिलीप बैठक की खिड़की और दरवाजों पर पर्दे डाले बैठा था। वितृष्णा और ग्लानि में समय स्वयं यातना बन जाता है। एक-एक मिनिट गुज़रना मुश्किल हो जाता है। समय को बीतता न देख दिलीप खीझ कर सो जाने का यत्न करने लगा। इसी समय जीने पर से छोटे भाई के धम-धम कर उतरते चले आने का शब्द सुनाई दिया। अलसाई हुई आँख को आधा खोल उसने दरवाजे की ओर देखा।

छोटे भाई ने पर्दे को हटाकर पूछा—'भाई जी, आपको कहीं जाना न हो तो मैं मोटर-साइकल ले जाऊँ'?

इस विघ्न से शीघ्र छुटकारा पाने के लिए दिलीप ने हाथ के इशारे से उसे इजाजत दे आँखें बन्द करली।

दिवार पर टंगे क्लाक ने कमरे को गुँजाते हुए छः बज जाने की सूचना दी। दिलीप को अनुभव हुआ—क्या वह यों ही कैद में पड़ा रहेगा। उठ कर खिड़की का पर्दा हटा कर देखा बारिश थम गई थी। अब उसे दूसरा भय हुआ; कोई न कोई आ बैठेगा और अप्रिय चर्चा चला देगा।

वह उठा, भाई की साइकल ले, गली के कीचड़ से बचता हुआ और उससे अधिक लोगों की निगाहों से छिपता हुआ वह मोरी दरवाज़े से बाहिर निकल, शहर की पुरानी फसील के बाग में से होता हुआ मिंटो-पार्क जा पहुँचा। उस लम्बे चौड़े मैदान में पानी से भरी घास पर पछवा के तेज़ झोंकों से ठिठरने के लिए उस समय कौन आता?

उस एकान्त में एक बेंच के सहारे साइकल को खड़ा कर वह उस पर बैठ गया। सिर पर से टोपी उतार कर उसने बेंच पर रख दी। सिर में ठण्ड लगने से उसके मस्तिष्क की व्याकुलता कुछ कम हुई।

एक ख़याल आया, यदि ठण्ड लगजाने से वह बीमार होजाए, उसकी हालत खराब हो जाए तो वह चुपचाप शहीद की तरह अपने दुःख को अकेला ही सहेगा। 'किसी को' अपने दुख का भाग लेने के लिए न बुलायेगा।

जो उस पर विश्वास नहीं कर सकता, जो उसके हृदय की कोमलता को अनुभव नहीं कर सकता, उसे क्या अधिकार कि उसके दुःख का भाग बंटाने आये।

एक दिन मृत्यु दबे पांव आयेगी और उसके रोग के कारण, हृदय की व्यथा और रोग को ले, उसके सिर पर सांत्वना का हाथ फेर उसे

शांत कर चली जायगी। उस दिन जो लोग रोने बैठेंगे उनमें हेमा भी होगी। उस दिन उसे खोकर हेमा अपने नुक़सान का अन्दाज़ा कर अपने व्यवहार के लिए पछतायेगी। यही बदला होगा दिलीप के चुपचाप दुख सहते जाने का। निश्चय कर उसने सन्तोष का एक दीर्घ निश्वास लिया और करवट बदल उस ठण्डी हवा को खाने के लिए बैठ गया।

समीप तीन फर्लांग पर मुख्य रेलवे लाइन से कितनी ही गाड़ियां गुजर चुकी थीं परन्तु उधर दिलीप का ध्यान न गया था। अब जब फ्रंटियरमेल तूफ़ान वेग से तीव्र कोलाहल करती हुई गुज़री तो दिलीप ने उस ओर देखा। लगातार फ़र्स्ट और सैकण्ड के डिब्बों से निकालने वाले तीव्र प्रकाश से वह समझ गया—फ्रण्टियर मेल जा रहा है साढ़े नौ बज गये हैं।

अपने प्रति किये गये अन्याय के प्रतिकार की एक दिन सम्भावना देख उसका मन कुछ हलका हो गया था। वह लौटने के लिए उठा। शरीर में शैथिल्य की मात्रा बाक़ी रहने के कारण साइकल पर न चढ़ वह पैदल-पैदल ही बाग़ोबाग़, बादशाही मसजिद से टकसाली दरवाज़े और टकसाली से भाटी-दरवाज़े पहुँचा। इस मार्ग से उसे कोई भी व्यक्ति दिखाई न दिया। सड़क के किनारे स्तब्ध खड़े बिजली के लैम्प निष्काम और निर्विकार भाव से अपना प्रकाश सड़क पर डाल रहे थे। मनुष्यों के अभाव की कुछ भी पर्वाह न कर, लाखों पतंगे गोल बाँध-बांधकर इन लेम्पों के चारों ओर नृत्य कर रहे थे। वे सैर-जगत के अद्युत नमूने थे। प्रत्येक पतंगा एक नक्षत्र की भांति अपने अपने मार्ग पर चक्कर काट रहा था। कोई छोटा कोई बड़ा दायरा बना रहा था। कोई दांये को, कोई बांये को, कोई आगे को, कोई विपरीत गति में, निरन्तर चक्कर

काटते चले जा रहे थे। कोई किसी से टकराता नहीं था। वृक्षों के भीगे पत्ते लैम्पों की किरणों मे चमचमा रहे थे।

एक लैम्प के नीचे से आगे बढ़ने पर उसकी छोटी परछाँई उसके आगे फैलती चलती। ज्यों-ज्यों वह लैम्प से आगे बढ़ता पछाँई की लम्बाई बढ़ती जाती, फिर दूसरे लैम्प की सीमा में पहुँचते ही परछाई पलट कर पीछे हो जाती। बीच-बीच में वृक्षों की टहनियों की परछाई उसके ऊपर से होकर निकल जाती। सड़क पर पड़ा हुआ प्रत्येक भीगा पत्ता लैम्पों की किरणों का उत्तर दे रहा था। दिलीप सोच रहा था—मनुष्य के बिना भी संसार कितना व्यस्त और रोचक है?

कुछ कदम आगे बढ़ने पर उसे किनारे के नींबू के वृक्षों की छाया में कोई श्वेत सी चीज़ दिखाई दी। कुछ और बढ़ने पर मालूम हुआ, कोई छोटा सा लड़का सफ़ेद कुर्ता पायजामा पहिरे, एक थाली सामने रखे कुछ बेच रहा है।

बचपन में गली मुहल्ले के लड़कों के साथ उसने अकसर खोमचेवाले से सौदा खरीद कर खाया था पर अब उसका उनसे कोई सम्बन्ध न था। परन्तु इस सर्दी में सुनसान सड़क पर, जहाँ कोई आने जाने वाला नहीं, यह खोमचा बेचने वाला कैसे बैठा है?

खोमचे वाले के क्षुद्र शरीर और आयु ने भी उसका ध्यान आकर्षित किया। उसने यह भी देखा कि रात में सौदा बेचने निकलने वाले इस सौदागर के पास एक मिट्टी के तेल की ढिबरी तक नहीं। समीप आकर उसनें देखा, वह लड़का सर्द हवा में सिकुड़ कर बैठा था। दिलीप के समीप आने पर उसने आशा की एक निगाह उसकी ओर डाली और फिर आँखें झुकालीं।

दिलीप ने और ध्यान से देखा, लड़के के मुख पर खोमचा बेचने

वालों की-सी चतुरता न थी बल्कि उसकी जगह थी, एक कातरता। उसकी थाली भी खोमचे का थाल न होकर घरेलू व्यवहार की एक मामूली हल्की मुरादाबादी थाली थी। तराजू भी न था। थाली में कागज के आठ टुकड़ों पर पकौड़ों की बराबर-बराबर ढेरियाँ लगा कर रख दी गई थीं।

दिलीप ने सोचा इस ठण्डी रात में हमी दो व्यक्ति बाहिर हैं। वह उसके पास जाकर ठिठक गया। मनुष्य मनुष्य में कितना भेद होता है ? परन्तु मनुष्यत्व एक चीज है जो कभी-कभी भेद की सब दीवारों को लाँघ जाती है। दिलीप को समीप खड़े होते देख लड़के ने कहा—

'एक एक पैसे में एक एक ढेरी।'

कुछ क्षण चुप रह कर दिलीप ने पूछा—'सब के कितने पैसे ?'

बच्चेने उंगली से ढेरियों को गिनकर जवाब दिया—'आठ पैसे'।

दिलीप ने केवल बात बढ़ाने के लिए पूछा—'कुछ कम नहीं लेगा ?'

सौदा बिक जाने की आशा से जो प्रफुल्लता बालक के चेहरे पर आगई थी वह दिलीप के इस प्रश्न से उड़ गई। उसने उत्तर दिया—'माँ बिगड़ेंगी।'

इस उत्तर से दिलीप द्रवित होगया और बोला—'क्या पैसे माँ को देगा।' बच्चे ने हामी भरी।

दिलीप ने कहा—'अच्छा सब देदो।'

लड़के की व्यस्तता देख दिलीप ने अपना रूमाल निकाल कर दे दिया और पकौड़े उसमें बँधवा लिये।

आठ पैसे का खोमचा बेचने जो इस सर्दी में निकला है उसके घर की क्या अवस्था होगी ? यह सोचकर दिलीप सिहर उठा। उसने जेब से एक रुपया निकाल कर लड़के की थाली में डाल दिया। रुपये की

खनखनाहट से वह सुनसान रात गूँज उठी। उस रुपये को देखकर लड़के ने कहा—'मेरे पास तो पैसे नही हैं।'

दिलीप ने पूछा—'तेरा घर कहाँ है ?'

'पास ही गली में है'—लड़के ने जवाब दिया।

दिलीप के मन में ऐसे घर को देखने का कौतूहल जग उठा। उसने कहा—'चलो मुझे भी उधर से ही जाना है रास्ते में तुम्हारे घर से पैसे ले लूँगा।

बच्चे ने घबराकर कहा—'पैसे इतने तो घर पर भी न होंगे।'

दिलीप सुन कर सिहर उठा परन्तु उसने उत्तर दिया—'होंगे तुम चलो।'

लड़का खाली थाली को छाती से चिपटा कर आगे चला, और उसके पीछे पीछे बाइसिकल को थामे दिलीप।

दिलीप ने पूछा—'तेरा बाप क्या करता है ?'

लड़के ने उत्तर दिया—'बाप मरगया है।'

दिलीप चुप हो गया। कुछ दूर और जाकर दिलीप ने पूछा—'तुम्हारी माँ क्या करती है ?"

लड़के ने उत्तर दिया—'माँ एक बाबू के यहाँ चौका वर्तन करती थी, अब बाबू ने उसे हटा दिया।'

दिलीप ने पूछा—'क्यों, हटा क्यों दिया बाबू ने ?'

लड़के ने जवाब दिया—'माँ ढ़ाई रुपया महीना लेती थी, जगतू की माँ ने बाबू से कहा कि वह दो रुपये में सब काम कर देगी। इस लिए बाबू की घरवाली ने माँ को हटाकर जगतू की माँ को रख लिया।'

दिलीप फिर चुप हो गया। लड़का नंगे पैर गली के कीचड़ में छप-छप करता चला जा रहा था, परन्तु दिलीप को कीचड़ से बचकर चलने

में असुविधा हो रही थी। लड़के की चाल की गति को कम करने के लिए दिलीप ने फिर प्रश्न किया—'तुम्हें जाड़ा नहीं मालूम होता ?'

लड़के ने शरीर को गरम करने के लिये चाल को और तेज़ करते हुए उत्तर दिया—'नहीं।'

दिलीप ने फिर प्रश्न किया—'जगतू की मां क्या करती थी ?'

लड़के ने कहा—'जगतू की माँ स्कूल में लड़कियों को घर से बुला लाती थी अब स्कूल वालों ने लड़कियाँ को घर से लाने के लिए लारी रखली है, उसे निकाल दिया।'

गली के मुख पर कमेटी का बिजली का लैप जल रहा था। ऊपर की मञ्जिल की खिड़कियों से भी गली में कुछ प्रकाश पड़ रहा था। उससे गली का कीचड़ चमक कर किसी क़द्र मार्ग दिखाई दे रहा था।

सँकरी गली में एक बड़ी खिड़की के आकर का दरवाज़ा खुला था। उसका धुँदला लाल सा प्रकाश सामने की पुरानी ईंटों की दीवार पर पड़ रहा था। इसी दरवाज़े में लड़का चला गया।

दिलीप ने झांककर देखा मुश्किल से आदमी के क़द की ऊँचाई की कोठरी में—जैसी प्रायः शहरों में ईंधन रखने के लिये बनी रहती है—मिट्टी के तेल की एक ढ़िबरी धुँआँ उगलती हुई अपना धुँदला लाल-सा प्रकाश फैला रही थी। एक छोटी-सी चार पाई, जैसी कि श्राद्ध में महाब्राह्मणों को दान दी जाती है, काली दीवार के सहारे खड़ी थी। उसके पाये से दो-एक मैले कपड़े लटक रहे थे। एक क्षीण काय आधी उमर की स्त्री एक मैली-सी धोती में शरीर लपेटे बैठी थी।

बेटे को देख स्त्रीने पूछा—'बेटा सौदा बिक गया ?'

लड़के ने उत्तर दिया,—'हाँ माँ', और रुपया माँ के हाथ देकर कहा—'बाकी पैसे बाबू को देने हैं।'

रुपया हाथ में लेकर माँ ने विस्मय से पूछा—'कौन बाबू, बेटा ?'

बच्चे ने उत्साह से कहा—'बाईसिकल वाले बाबू ने सब सौदा लिया है, उसके पास छुट्टे पैसे नहीं थे, बाबू गली में खड़ा है।'

मां ने घबरा कर कहा,—'रुपये के पैसे कहाँ मिलेंगे बच्चा ?' और सिर के कपड़े को कुछ आगे बढ़ाकर कहा—'बेटा, रुपया बाबूजी को लौटा कर घर का पता पूछले, पैसे कल ले आना।'

लड़का रुपया ले दिलीप को लौटाने आया। दिलीपने ऊँचे स्वर से, ताकि माँ सुनले कहा—'रहने दो रुपया, कोई परवाह नहीं फिर आ जायगा।'

स्त्रीने, सिरके कपड़े को और आगे खींचकर कहा—'नहीं जी आप रुपया लेते जाइये, बच्चा पैसे कल ले आयगा।'

दिलीप ने शरमाते हुए कहा—'रहने दीजिये यह पैसे मेरी तरफ़ से बच्चे को मिठाई खाने के लिए रहने दीजिये।'

स्त्री नहीं-नहीं करती रह गई और दिलीप अँधेरे में पीछे हटगया।

स्त्री के मुर्झाये कुम्हलाये पीले चेहरे पर कृतज्ञता और प्रसन्नता की झलक छा गई।

रुपया अपनी चादर की खूँट में बाँध, एक ईंट पर रखे पीतल के लोटे को बाँह के इशारे से हिला पानी ले उसने हाथ धो लिया और पीतल के एक बेले के नीचे से मैले अँगोछे में लिपटी एक रोटी निकाल, बेटे का हाथ धुला उसे खाने को दे दी।

बेटा तुरन्त की कमाई से पुलकित हो रहा था। उसने मुँह बनाकर कहा—'ऊँ-ऊँ रूखी रोटी !'

माँ ने पुचकारकर कहा—'बेटा नमक डाला हुआ है।'

बच्चे ने रोटी जमीन पर डाल दी और ऐंठकर कहा—'सुबह भी रूखी रोटी, हाँ, रोज-रोज रूखी।'